राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

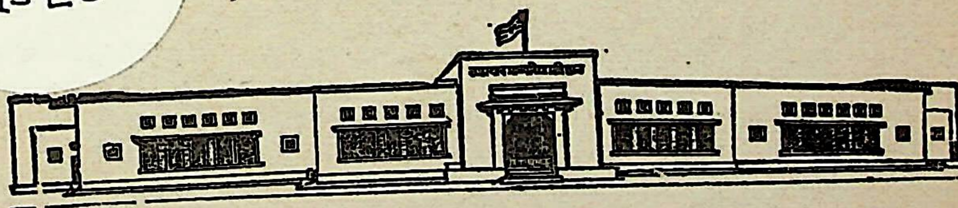
प्रधान सम्पादक—फतहसिंह, एम.ए., डी.लिट्.

[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क ११४

सांख्यायनमुनिप्रणीतम्

सांख्यायनतन्त्रम्



प्रकाशक

राजस्थान-राज्य-संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR.



राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक – फतहसिंह, एम.ए., डी.लिट्.

[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क ११४

सांख्यायनमुनिप्रणीतं

सांख्यायनतन्त्रम्

सम्पादको

गोस्वामिश्रीलक्ष्मीनारायण-दीक्षितः

वरिष्ठ-शोधसहायकः,

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

प्रकाशक

राजस्थान-राज्य-संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

१९७० ई०

प्रथमावृत्ति १००० मूल्य 4.00

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान-राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यत: अखिलभारतीय तथा विशेषत: राजस्थानदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषानिबद्ध
विविधवाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्ट-ग्रन्थावली

प्रधान सम्पादक

फतहसिंह, एम.ए.,डी.लिट्.
निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

ग्रन्थाङ्क ११४

सांख्यायनमुनिप्रणीतं

सांख्यायनतन्त्रम्

प्रकाशक

राजस्थान-राज्याज्ञानुसार

निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर (राजस्थान)

१९७० ई०

वि० सं० २०२६ भारतराष्ट्रीय शकाब्द १८९१

मुद्रक—हरिप्रसाद पारीक, साधना प्रेस, जोधपुर

प्रधानसम्पादकीय वक्तव्य

प्रस्तुत ग्रन्थ का सम्पादन श्रीलक्ष्मीनारायण गोस्वामी ने ५ हस्तलेखों के आधार पर किया है और पाठान्तरों को पाद-टिप्पणियों में दे दिया है। विद्वान् सम्पादक ने पुस्तक के पाठ को शुद्धतम रूप में प्रस्तुत करने के अतिरिक्त न केवल विद्वानों के लिए अपि तु साधकों के लिए भी उपयोगी एवं आवश्यक सामग्री को भूमिका तथा परिशिष्टों के रूप में दे दिया है। यह ग्रन्थ यद्यपि आकार में छोटा है, परन्तु 'बगला' की साधना के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सम्पादक ने मन्त्रोद्धार को स्पष्ट करने का जो प्रयत्न किया है वह स्तुत्य है और इससे प्रकट है कि श्रीगोस्वामीजी को तन्त्र के व्यवहारपक्ष का कितना ज्ञान अपनी पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिला है। इसीप्रकार पुस्तक की भूमिका के अन्तर्गत सम्पादक ने आगम-निगमादि के विषय में जो सामग्री प्रस्तुत की है वह भी बड़ी उपयोगी है और मैं इस सबके लिए विद्वान् सम्पादक को बधाई देता हूं। तन्त्रशास्त्र के अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, परन्तु व्यवहार-पक्ष की उपेक्षा करने से वे प्रायः दुर्बोध बन गए हैं। मेरी इच्छा थी कि वह कमी इस ग्रन्थ में नहीं रहती। श्रीगोस्वामीजी तन्त्र-व्यवहार में भी पारङ्गत हैं, अतः इस कमी को दूर करना उनके लिए कठिन नहीं था और उन्होंने किसी सीमा तक इसको दूर किया भी है। परन्तु फिर भी ग्रन्थ के आकार के बढ़ने के भय से बहुत सी सामग्री नहीं दी गई। आशा है वह सब दूसरे रूप में तन्त्र-शास्त्र के व्यवहारपक्ष को उपस्थित करते हुए अन्यत्र दी जा सकेगी।

ग्रन्थ का मुद्रण प्रारम्भ हो गया था, परन्तु सम्पादक महोदय की अनेक व्यक्तिगत कठिनाइयों अथवा प्रतिष्ठान या प्रेस में उपस्थित अनेक विघ्न-बाधाओं के कारण, ग्रन्थ के प्रकाशन में आशातीत विलम्ब हुआ जिसके लिए मैं प्रतिष्ठान की ओर से क्षमाप्रार्थी हूँ।

अन्त में, मैं प्रकाशन विभाग के अध्यक्ष म० विनयसागर तथा साधना प्रेस के व्यवस्थापक श्रीहरिप्रसाद पारीक को धन्यवाद अर्पित करता हूँ जिन्होंने रुचि एवं लगन के साथ इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने में सहयोग दिया है।

—फतहसिंह

१ जनवरी, १९७०
जोधपुर

भूमिका

भारतवर्ष एक धर्मप्रधान देश है। यहाँ अनादिकाल से निगम एवं आगम-सम्मत धर्म की ही स्थिति प्रधान रूप में प्रचलित रही है। मन्त्रब्राह्मणात्मक वेदों को निगम अथवा छन्द नाम से वामन, भट्टोजी दीक्षित आदि महापण्डितों ने अभिहित किया है—'नितरामत्यन्तं निश्चयेन वा गच्छन्ति अवगच्छन्ति (जानन्ति) धर्ममनेनेति निगमश्छन्दः' अर्थात् f रन्तर अथवा निश्चयपूर्वक जिसके द्वारा धर्म को जानते हैं उसे निगम अर्थात् छन्द कहते हैं। परा और अपरा-नामक विद्याओं[1] की स्थिति भी इसी में निहित है अतः इसी निगम को धर्मशास्त्र के आचार्य मनु ने विद्या एवं धर्म का स्थान माना है 'वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्य्ययः' अर्थात् वेदविहित कार्य ही धर्म एवं तदितर कार्य अधर्म है। याज्ञवल्क्य ने भी पुराण, न्याय, मीमांसा एवं धर्मशास्त्रस्वरूप अङ्गों से युक्त वेद को धर्म एवं चौदह विद्याओं का स्थान बतलाया है—

'पुर णन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।'

त्रिकालदर्शी महर्षियों ने सम्पूर्ण शब्दराशि को आगम-निगम-भेद से दो भागों में विभक्त किया है। क्यों कि प्रकृतिसिद्ध नित्यशब्दब्रह्म इन्हीं दो भागों में विभक्त है। यद्यपि 'अथो वागेवेदं सर्वम्'[2] 'वाचीमा विश्वा भुवनान्यर्पिता'[3] आदि श्रौतसिद्धान्तों के अनुसार वाक्तत्व से प्रादुर्भूत होने वाले शब्दप्रपञ्च से कोई स्थान खाली नहीं है तथापि स्वर्गनाम से प्रसिद्ध १४ प्रकार के भूतसर्ग के साथ प्रधानरूप से अग्निवाक् और इन्द्रवाक् का ही सम्बन्ध है। पृथिवी अग्निमयी है और द्युलोकोपलक्षित सूर्य इन्द्रमय है[4]। पार्थिव एवं सौर अग्नि अन्नाद (अन्न खानेवाले) हैं और मध्यपतित चान्द्र सोम इन अग्नियों का अन्न बन रहा है[5]। अन्न जब अन्नाद के उदर में चला जाता है तो केवल अन्नाद-सत्ता ही

---

१. 'द्वे विद्ये वेदितव्ये परा चैवापरा च'। (१) परा—उपनिषद्विद्या। (२) अपरा—ऋग्वेदादिः।
२. ऐतरेयारण्यक० ३।१।६।
३. तैत्तिरीय ब्राह्मण २।८।८।४।
४. 'यथाग्निगर्भा पृथिवी तथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी' शतपथब्राह्मण १४।९।७।२०
५. 'एष वै सोमो राजा देवानामन्नं यच्चन्द्रमाः' ,, १।६।४।५

रह जाती है; अन्न की स्वतन्त्रता हट जाती है[1]। इसीलिये त्रैलोक्य के लिये 'द्यावापृथिवी' का व्यवहार ही होता है। अतः प्रधानतः पृथिवीलोक एवं सूर्यलोक ही रह जाते हैं। दोनों अग्निमय हैं। पार्थिवाग्नि गायत्राग्नि है और सौर अग्नि सावित्राग्नि है। ये दोनों अग्नियाँ 'वाक्' कहलाती हैं[2]। वैज्ञानिक परिभाषा के अनुसार पृथिवी की वाक् अनुष्टुप् और सूर्य की वाक् बृहती कहलाती है। अनुष्टुप् वाक् से कचटतप-आदिरूपा वर्णवाक् का तथा बृहती-वाक् से अ आ इ-आदिरूपा स्वरवाक् का प्रादुर्भाव होता है। 'स्वरोऽक्षरम्' के अनुसार स्वर अक्षर हैं, अविनाशी हैं। वर्ण 'क्षर' हैं, विनाशशील हैं। जिस प्रकार अर्थसृष्टि में भौतिक क्षरकूट की प्रतिष्ठा अक्षरतत्व है उसी प्रकार 'शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति' के अनुसार अर्थब्रह्म की समान धारा में प्रवाहित होने वाले शब्दब्रह्म में भी क्षररूप वर्ण की प्रतिष्ठा अक्षररूप स्वरतत्व ही है। अर्थब्रह्म में जैसे अक्षररूप सूर्यसत्ता को छोड़कर क्षररूपा पृथिवी अपने रूप में प्रतिष्ठित नहीं रह सकती है इसी प्रकार सूर्यवाङ्मूलक स्वरतत्व के विना पृथिवीमूलिका वर्णराशि भी स्व-स्वरूप में प्रतिष्ठित नहीं रह सकती है। स्वरमूलक इस सूर्यविद्या का ही नाम 'त्रयीविद्या' है। सूर्य नहीं तप रहा है, त्रयीविद्या तप रही है, 'सैषात्रय्येव विद्या तपति'[3] और त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः' का भी यही रहस्य है। यह वेदतत्व नित्यतत्व है, स्वयं प्रादुर्भूत है, स्वयं ब्रह्म के मुख से उद्गीर्ण है। इसीलिये महर्षियों ने इसे 'निगम' एवं श्रुति की संज्ञा दी है।

शनि, मङ्गल, शुक्र, बुध, पृथिवी आदि सूर्य के उपग्रह हैं। सूर्य का ही प्रवर्ग्यभाग शनि-आदिरूप में परिणत हो कर सूर्य के चारों ओर घूम रहा है। सूर्यविद्या का अंशभूत पृथिवीलोक सूर्य के चारों ओर घूम रहा है। पृथिवी-विद्या सूर्यविद्या से आई है। इसी रहस्य को समझाने के लिये महर्षियों ने पृथिवीविद्या का नाम 'आगम' रखा है। सूर्यविद्या की तरह पृथिवीविद्या स्वयं निर्गत नहीं है अपि तु निगम से आई है 'निगमादागत आगमः'। ऊपर कहा जा चुका है कि पृथिवी की वाक् वर्णवाक् स्वर से भिन्न है। अतः आगमशास्त्रोक्त प्रयोगों का उदात्तादिस्वरों से विशेष सम्बन्ध नहीं माना जाता है। वहाँ केवल

---

१. 'द्वयं वा इदम् - अत्ता चैवाद्यञ्च । तद्यद्रोभयं समागच्छति-अत्तैवाख्यायते नाद्यम् । स वै यः सोऽत्ताग्निरेव सः ।' शतपथब्राह्मण १०।६।३।१
२. 'तस्य वा-एतस्याग्नेर्वागेवोपनिषत्' । ,, १०।५।१।१
३. शतपथब्राह्मणम् १०।५।२।२।

शब्द की आवृत्ति से ही सिद्धि हो जाती है किन्तु निगमविद्या में यह बात नहीं है, वहाँ स्वरवाक् की प्रधानता है। विना स्वर के निगमकाण्ड निरर्थक है। अतः यह स्पष्ट है कि सूर्यविद्या निगमविद्या है और पृथिवीविद्या आगमविद्या है। इन दोनों में सूर्य एवं पृथिवी का ही निरूपण हो, ऐसी बात नहीं है, अपि तु दोनो में सारे विश्व का निरूपण है। भेद केवल दृष्टि का है। सूर्य पिता है तो पृथिवी माता[1]। पिता पुरुष है तो माता प्रकृति। पुरुष रेतोधा है तो प्रकृति योनि है। पुरुषशास्त्र निगम है जिसे वेदपुरुष कहा जाता है और प्रकृतिशास्त्र आगम है। इसी को आगमविद्या कहते हैं और इसके बिना निगम अप्रतिष्ठित है।

आगम अथवा पञ्चम वेद

श्रौतकाल के अनन्तर उसके अनुसन्धान में आगमग्रंथों का आविर्भाव हुआ है जैसा कि छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित पञ्चामृतविद्या से ज्ञात होता है।[2] उसमें सूर्यबिम्ब को 'देवमधु' कहा है और वह अपनी पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चार दिशाओं की किरणों द्वारा ब्रह्माण्ड में मधुरस का प्रसारण करता है। पूर्वदिशा की किरणें ऋग्वेदरूपी पुष्प का रस खींचती हैं उसमें से जो मधु उत्पन्न होता है उससे वसुदेवता अग्नि द्वारा तृप्त होते हैं। दक्षिण दिशा की किरणें यजुर्वेद के पुष्परस को चूसती हैं और उससे उत्पन्न अमृत से रुद्रदेवता इन्द्र द्वारा पुष्ट होते हैं। पश्चिम दिशा की किरणें सामवेद के पुष्पों का रस खींचती हैं और उसके अमृत से आदित्यदेवता वरुण द्वारा तृप्त होते हैं और उत्तर दिशा की किरणें अथर्ववेद के पुष्पों के सार को खींचती हैं और उसके अमृत से मरुत् देवता सोम द्वारा पुष्ट होते हैं। विद्यारूपी अमृत अथवा मधु के आधारपुष्प ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में अवस्थित हैं और उनके सार को भगवान् सूर्य अपने बिम्ब में खींच कर उससे वसु, रुद्र, आदित्य और मरुत् इन देवताओं के गण अनुक्रम से अग्नि, इन्द्र, वरुण और सोम इन चार अध्यक्षों द्वारा मधुरस भोगकर तृप्त होते हैं। इन चार मुखों के रूपकवाले ब्रह्मदेव को चारों वेदों का प्रवर्त्तक माना गया है। इसके अतिरिक्त इसी उपनिषद् में सूर्य के ऊर्ध्वमुख का भी वर्णन है। उसकी किरणें परोरजा कहलाती हैं क्योंकि उसमें रजस् अर्थात् रजोगुण या राग का स्पर्श नहीं है। ये किरणें 'गुह्य आदेश' को ब्रह्मतत्व के पुष्प में से खींचती हैं और उसका जो मधु होता है उसे प्रणव द्वारा साध्य देवता अर्थात् सिद्धजन भोगते हैं। इसी 'गुह्य

१. 'द्योष्पितः पृथिवी मातः' (ऋक्–४।८।११)।
२. छान्दोग्योपनिषत्—तृतीयाध्यायात्।

आदेश' को 'आगम' कहते हैं जिस प्रकार चारों वेदों में प्रकट आदेश निगम कहा जाता है। आगमवादी इस ऊर्द्ध्वमुख को परमेश्वर अर्थात् शिव का पञ्चममुख कहते हैं और वह ऊर्ध्वस्रोत द्वारा ब्रह्मविद्या चार वेदों में ही समाप्त नहीं होती परन्तु देश, काल और निमित्तों के परिवर्त्तन से युगानुसार सिद्धजनों द्वारा प्रकट होती है। इसीलिये माण्डूक्योपनिषद्' को आगमप्रकरण ही कहते हैं।

आगम का लक्षण वाचस्पतिमिश्र ने इस प्रकार किया है कि जिससे भोग और मोक्ष दोनों का स्वरूप समझा जा सके वह आगम है। प्राचीन वेद-साहित्य कर्मकाण्ड द्वारा केवल स्वर्गादि योगसाधनों का स्वरूप समझाता है अथवा ज्ञानकाण्ड द्वारा केवल मोक्ष का स्वरूप और उसके साधन बतलाता है, परन्तु पञ्चम आगम-साहित्य भोग और मोक्ष की एकवाक्यता करके क्रमपूर्वक व्यवहारसुख और परमार्थसुख दोनों दे सकता है।

तन्त्र—आगम

तन्त्र वह विज्ञान है जो ऐसे साधनों और योगों का निर्देश करता है जिनके द्वारा मनोबल की उन्नति की जा सकती है। इन साधनों एवं प्रयोगों का उद्देश्य निस्संदेह मोक्ष की प्राप्ति है। परन्तु एक जन्म में सब लोग इस स्थिति पर नहीं पहुँच सकते, अभ्यास करते-करते उनके अन्दर कुछ विशिष्ट शक्तियाँ जागृत हो जाती हैं जिन्हें सिद्धि कहते हैं। सिद्धियाँ कुछ अलौकिक शक्तियाँ हैं जिनका प्रयोग वे ही कर सकते हैं जिन्होंने इन्हें प्राप्त किया है। अन्य कोई भी व्यक्ति इनका उपयोग नहीं कर सकता। पातञ्जल योगसूत्र में अणिमा, गरिमा, लघिमा आदि आठ सिद्धियाँ मानी हैं। परन्तु उसके पीछे के ग्रन्थों ने चौतीस सिद्धियाँ मानी हैं। हिन्दू और बौद्ध तन्त्रों के विभिन्न आगमों के द्वारा निर्दिष्ट विधि एवं साधनों का अनुसरण करने से इनमें से कुछ अथवा अधिक सिद्धियों का प्राप्त कर लेना सम्भव है। तन्त्रों का यह उद्घोष है कि जगत् के भौतिक साधनों की उन्नति द्वारा जो कुछ सम्भव हो सकता है, उसे एक ही व्यक्ति अपनी मानसिक शक्ति के विकास द्वारा सिद्ध कर सकता है।

तन्त्रों के प्रति सामान्यतया यह भ्रान्ति फैली हुई है कि तन्त्र वेदों से भिन्न हैं और इनमें अनार्यों के से आचरण एवं व्यवहारों का दर्शन होता है। वस्तुतः यह भ्रान्तिमात्र है। तन्त्र वेदबाह्य न होकर वेद-सम्मत हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि तन्त्र वेदों की तरह किसी भी वर्ण के लिये अग्राह्य नहीं हैं। तन्त्रों में सर्वसाधारणजनों के लिये साधन का मार्ग प्रस्तुत किया गया है। वेद की क्रियाएँ सामान्यजनों के लिये अधिक परिश्रमसाध्य, व्ययसाध्य एवं प्रतिबन्ध-

साध्य होने से उन क्रियाओं को यथाविधि सम्पन्न करना सहजसाध्य नहीं है। इसीलिये परमकारुणिक भगवान् शिव ने सहजसाधनगम्य तन्त्रों का प्रकटीकरण 'आगम' नाम से किया है।

तन्त्र की व्युत्पत्ति एवं परिभाषा

भारतीय कोशकारों के अनुसार 'तन्त्र' शब्द का प्रयोग आगम, सिद्धान्त, शिवमुखोक्तशास्त्र आदि के अर्थों में हुआ है, वामन, भट्टोजी दीक्षित आदि महावैयाकरण पण्डितों ने 'तन्त्र' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—'तनोति सर्वशास्त्राणां सिद्धान्तान् यत्तात्तन्त्रम्' अर्थात् जो समस्त शास्त्रों के सिद्धान्त अथवा निर्णयों का विस्तार करे उसे 'तन्त्र' कहते हैं।

प्राचीन शास्त्रों में यद्यपि तन्त्र-शब्द का प्रयोग अनेक विषयों के शास्त्रों के लिये हुआ है जैसे—'कपिलतन्त्र, वासिष्ठतन्त्र, जैमिनितन्त्र, पूर्वतन्त्र, उत्तरतन्त्र आदि'। तथापि इस शब्द का अधिकतर प्रचलन आगमशास्त्र, निगमशास्त्र अथवा शिवमुखोद्गीर्ण शास्त्र के लिये ही हुआ है—

आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतञ्च गिरिजामुखम्।
मतञ्च वासुदेवस्य तस्मादागममुच्यते॥

(सिंहसिद्धान्तसिन्धु पृ०–४२६)

× × ×

आगतं शिववक्त्राच्च गतश्च गिरिजामुखे।
तेनागमानि तन्त्राणि कथितानि वरानने॥१२७॥

यानि कानि च शास्त्राणि कथितान्यागमस्य च।
तानि तानि प्रकथ्यन्ते कौलाचरणहेतवे॥१२८॥

(समयाचारतन्त्र)

निर्गतं गिरिजावक्त्राद् गतं च गिरिजाश्रुतौ।
मतं च वासुदेवस्य तस्मान्निगम उच्यते॥

आज्ञावस्तु समन्ताच्च गम्यत इत्यागमः स्मृतः।
तनुते त्रायते नित्यं तन्त्रमित्थं विदुर्बुधाः॥

[श्रीसत्कारिशर्मालिखित भूमिका (दुर्गासप्तशती चौखम्बासंस्कृत सीरीजी वाराणसी)]

तन्त्र की परिभाषा शास्त्रों में इस प्रकार प्राप्त है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च मन्त्रनिर्णयमेव च।
देवतानां च संस्थानं तीर्थानां चैव वर्णनम् ॥
तथैवाश्रमधर्माश्च विप्रसंस्थानमेव च।
संस्थानं चैव भूतानां यन्त्राणां चैव निर्णयः ॥
उत्पत्तिर्विबुधानाञ्च तरूणां कल्पसंज्ञितम्।
संस्थानं ज्योतिषां चैव पुराणाख्यानमेव च ॥
कोषस्य कथनञ्चैव व्रतानां परिभाषणम्।
शौचाशौचस्य चाख्यानं स्त्रीपुंसोश्चैव लक्षणम् ॥
राजधर्मो दानधर्मो युगधर्मस्तथैव च।
व्यवहारः कथ्यते च तथा चाध्यात्मवर्णनम् ॥
इत्यादिलक्षणैर्युक्तं तन्त्रमित्यभिधीयते।

अर्थात् तन्त्रशास्त्र उसे कहते हैं जिसमें सृष्टि, प्रलय मन्त्रनिर्णय, देवता-संस्थान, तीर्थवर्णन आदि का वर्णन हो।

वाराहीतन्त्र के कथनानुसार तो तन्त्र 'कल्प' के अन्तर्गत है—

कल्पश्चतुर्विधः प्रोक्तः आगमो डामरस्तथा।
यामलश्च तथा तन्त्रं तेषां भेदाः पृथक् पृथक् ॥

इस परिभाषा से तो वेद के छह अंगों का कल्प ही वस्तुतः 'तन्त्र' है। बौद्धों का दीर्घनिकाय इसी कल्प को 'कैटुभ' कहता है जिसका अध्ययन-अध्यापन भगवान् बुद्ध के समय में खूब प्रचलित था।

तन्त्रों में वाममार्ग और पञ्चमकार

तन्त्रों का लक्ष्य आदि से अन्त तक अद्वैत रहा है और तन्त्र वेद का साथी रहा है किन्तु 'कालस्य कुटिला गतिः' के अनुसार, वर्तमान में तन्त्रतत्त्व से अनभिज्ञ विद्वानों ने यह भ्रान्त धारणा उत्पन्न कर दी है कि 'तन्त्रों में वाम मार्ग एवं पञ्चमकार का विशेष रूप से प्रतिपादन होने के कारण अनार्यमार्ग का प्रतिपादक है, अतः हेय है।' अतः यहाँ पर वाममार्ग एवं पञ्चमकारों के सम्बन्ध में संक्षेपतः विश्लेषण करना असमीचीन नहीं होगा।

तन्त्र-प्रवर्त्तक भगवान् शंकर ने वाममार्ग को योगियों के लिये भी परमगूढ एवं अगम्य बतलाया है। ऐसी अवस्था में वाममार्ग 'अनार्यों का मार्ग' हो ही कैसे सकता है ? केवल 'वाम' एवं तत्प्रतिपादित 'पंचमकार' शब्दमात्र से ही इसे 'अनार्य मार्ग' कहना अनुपयुक्त है क्यों कि वामशब्द का प्रयोग वेदों में भी प्रशस्यार्थ में परिलक्षित होता है। ऋग्विधान में कहा है—

अस्य वामस्य सूक्तं तु जपेच्चान्यत्र वा जले।
ब्रह्महत्यादिकं दग्ध्वा विष्णुलोकं स गच्छति ॥

अर्थात् इस वामसूक्त के पाठमात्र से ही विष्णुलोक की प्राप्ति अर्थात् 'तद्विष्णोः परमं पदम्' के अनुसार विष्णुपदप्राप्तिरूपी मोक्ष की प्राप्ति होती है।

निरुक्त (निघण्टु) में वामशब्द का अर्थ 'प्रशस्य' लिखा है—

'अस्रेमाः, अनेमाः, अनेद्यः, अनवद्यः, अनभिशस्ताः, उक्थ्यः, सुनीथः, पाकः, वामः, वयुनमिति दश प्रशस्यनामानि।

यहाँ वामनाम प्रशस्य का द्योतक है और प्रशस्य प्रज्ञावान् ही होते हैं—य एव हि प्रज्ञावन्तस्त एव हि प्रशस्या भवन्ति'। इससे स्पष्ट है कि प्रज्ञावान् प्रशस्य योगी का नाम ही 'वाम' है और उस योगी के मार्ग का ही नाम 'वाममार्ग' है। इस मार्ग में जितेन्द्रिय के लिये ही अधिकार की व्यवस्था है, न कि इन्द्रियलोलुप प्राणियों के लिये जैसा कि भगवान् शङ्कर का कथन है—

परद्रव्येषु योऽन्धश्च परस्त्रीषु नपुंसकः।
परापवादे यो मूकः सर्वदा विजितेन्द्रियः।
तस्यैव ब्राह्मणस्यात्र वामे स्यादधिकारिता।

(मेरुतन्त्र)

अर्थात् परद्रव्य, परदारा और परापवाद से विमुख, संयमी ब्राह्मण ही वाममार्ग का अधिकारी होता है।

अयं सर्वोत्तमो धर्मः शिवोक्तः सर्वसिद्धिदः।
जितेन्द्रियस्य सुलभो नान्यस्यानन्तजन्तुभिः।

(पुरश्चर्यार्णव)

इसी प्रकार मेरुतन्त्र आदि आगमग्रन्थों में पञ्चमकारों की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

मद्यं मांसञ्च मीनञ्च मुद्रा मैथुनमेव च।
मकारपञ्चकं प्राहुर्योगिनां मुक्तिदायकम् ॥

अर्थात्—मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन ये पांच आध्यात्मिक मकार ही योगियों को मोक्ष देने वाले हैं।

व्योमपङ्कजनिष्यन्दसुधापानरतो भवेत्।
मद्यपानमिदं प्रोक्तमितरे मद्यपायिनः ॥

ब्रह्मरन्ध्र-सहस्रदल से जो स्रवित होता है उसे सुधा (अमृत) कहते हैं जिसे

कुलकुण्डलिनी द्वारा योगिजन प्राप्त करते हैं इसी का नाम मद्यपान है। इसके अतिरिक्त पीने वाला मद्यप कहलाता है।

अर्थात्–ब्रह्मरन्ध्र के सहस्रारकमलरूपी पात्र से जो ब्रह्माण्ड को तृप्त करने वाली सुधा-धारा बहती है वही पीने योग्य मद्य (मदिरा) है।

पुण्यापुण्यपशुं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित्।
परे लयं नयेच्चित्तं मांसाशी स निगद्यते॥

अर्थात्—पुण्य-पापरूपी पशु को ज्ञानरूपी खड्ग से मार कर जो योगी मन को ब्रह्म में लीन करता है, वही मांसाशी (मांसाहारी) है।

और भी—

कामक्रोधौ पशू तुल्यौ बलिं दत्वा जपं चरेत्।

× × ×

कामक्रोधसुलोभमोहपशुकांश्छित्वा विवेकासिना।
मांसं निर्विषयं परात्मसुखदं भुञ्जन्ति तेषां बुधाः॥

अर्थात्—विवेकी पुरुष काम, क्रोध, लोभ और मोहरूपी पशुओं को विवेक-रूपी तलवार से काट कर दूसरे प्राणियों को भी सुख देने वाले निर्विषयरूप मांस का भक्षण करते हैं।

मानसादीन्द्रियगणं संयम्यात्मनि योजयेत्।
स मीनाशी भवेद्देवि इतरे प्राणिहिंसकाः॥

मन आदि सारी इन्द्रियों को वश में करके आत्मा में लगाने वालों को ही मीनाशी (मत्स्याहारी) कहते हैं, इससे इतर जीवहिंसक हैं।

आशातृष्णाजुगुप्साभयविषयघृणामानलज्जाप्रकोपा
ब्रह्माग्नावष्टमुद्राः परसुकृतिजनः पच्यमानः समन्तात्।
नित्यं सम्भावयेत्तानवहितमनसा दिव्यभावानुरागी,
योऽसौ ब्रह्माण्डभाण्डे पशुहतिविमुखो रुद्रतुल्यो महात्मा॥

अर्थात्—आशा-तृष्णादि आठ मुद्राओं को ब्रह्मरूपी अग्नि में अच्छी तरह पकाता हुआ दिव्य भाव का अनुरागी जो योगी पशु-हिंसा से पराङ्मुख होकर सावधान मन से भक्षण करे; वह महात्मा पुरुष संसार में रुद्रतुल्य होता है।

या नाडी सूक्ष्मरूपा परमपदगता सेवनीया सुषुम्णा,
सा कान्ताऽऽलिङ्गनार्हा न मनुजरमणी सुन्दरी वारयोषित्।

कुर्याच्चन्द्रार्कयोगे युगपवनगते मैथुनं नैव योनौ,
योगीन्द्रो विश्ववन्द्यः सुखमयभवने तां परिष्वज्य नित्यम् ॥

अर्थात्—परमानन्द को प्राप्त हुई सूक्ष्मरूपवाली सुषुम्णा नाड़ी है, वही आलिङ्गन करने योग्य उपभोग्या कान्ता है, न कि मनुष्यरूपा सुन्दरी वेश्या। सुषुम्णा का सहस्रचक्रान्तर्गत परब्रह्म के साथ संयोग का ही नाम मैथुन है, स्त्री-सम्भोग का नहीं।

और भी—

ध्यानं देव्याः पदाम्भोजे पञ्चमं परिकीर्त्तितम्।

अर्थात्—श्रीदेवी के श्रीचरणों का चिन्तन ही पञ्चम अर्थात् मैथुन है।

सांख्यायनतन्त्र

प्रस्तुत 'सांख्यायनतन्त्र' तन्त्रशास्त्र का ही सांख्यायनमुनिप्रोक्त[1] एक लघुग्रन्थ है। यद्यपि इसकी परिगणना शिवमुखोद्गीर्ण नानागमों में वर्णित ६४ तन्त्रों में तो नहीं की गई है, फिर भी यह मुनिप्रणीत होने के कारण उपतन्त्रों में अवश्य ही परिगणनीय है जैसा कि वाराहीतंत्र[2] के निम्न पद्यों से स्पष्ट है—

बौद्धोक्तान्युपतन्त्राणि कापिलोक्तानि यानि च।
अद्भुतानि च एतानि जैमिन्युक्तानि यानि च॥
वसिष्ठः कपिलश्चैव नारदो गर्ग एव च।
पुलस्त्यो भार्गवः सिद्धो याज्ञवल्क्यो भृगुस्तथा॥
शुक्रो बृहस्पतिश्चैव अन्ये ये मुनिसत्तमाः।
एभिः प्रणीतान्यन्यानि उपतन्त्राणि यानि च॥
न संख्यातानि तान्यत्र धर्मविद्भिर्महात्मभिः।
सारात्सारतराण्येव संख्यातानि निबोधत॥

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि 'जगत् के भौतिक साधनों की उन्नति के द्वारा जो कुछ संभव हो सकता है उसे एक ही व्यक्ति अपनी मानसिक शक्ति के विकास द्वारा सिद्ध कर सकता है। इस मानसिक शक्ति को बढ़ाने का उत्तम साधन है—वाणी द्वारा अथवा मन ही मन मन्त्रों का उच्चारण करना। आगम-ग्रन्थों में ऋषि महर्षियों द्वारा सुदीर्घकाल

---

१. पद्मजो नारदो विद्वां सांख्यायनमुनिं प्रति।
उपदेशक्रमेणैव उक्तवान्मेरुकन्दरे ॥१५॥
तेन देवीकटाक्षेण कृतवानागमं भुवि।
[सांख्यायनतन्त्र-प्रथम पटल]

२. शब्दकल्पद्रुम—द्वितीयकाण्ड, पृष्ठ – ५८५।

तक अनुभूत एवं सुपरीक्षित कुछ ऐसे शब्दों एवं शब्दसमूहों का निर्देश किया गया है जिन्हें 'बीजमन्त्र', 'हृदयमन्त्र' अथवा 'मालामन्त्र' कहा गया है[१]। इन मन्त्रों का निश्चित संख्या में जप करने से (उच्चारण करने से) निश्चित ही अपने उद्देश्यों (मनोरथों) की प्राप्ति होती है जैसा कि निम्नोक्ति से स्पष्ट है—
'एकः शब्दः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति'।

प्रस्तुत ग्रन्थ इसी का एक ज्वलन्त उदाहरण है जिसमें नारदोपासिता श्रीवगलामुखीदेवी की पञ्चाङ्गोपासना-विधि के साथ ऐसे विशिष्ट १५ मन्त्रों के प्रयोग-विधान बतलाये गये हैं जिनके द्वारा साधक (उपासक) मनुष्य अत्यन्त विस्मयोत्पादक अलौकिक शक्तियों (सिद्धियों) को अर्जित कर अपनी समस्त अभिलाषाओं को प्राप्त कर सकता है।

श्रीवगलामुखी

श्रीवगलामुखी आगमग्रन्थों में वर्णित दश महाविद्याओं[२] में अन्यतम है जिसे इस तन्त्र में ब्रह्मास्त्रस्तम्भिनीविद्या, स्तब्धमाया, प्रवृत्तिरोधिनी, वगला, मन्त्रजीवनविद्या, प्राणिप्राणापहारिका एवं षट्कर्माधारविद्या के नाम से अभिहित किया गया है—

ब्रह्मास्त्रस्तम्भिनी विद्या स्तब्धमायासनुस्तथा।
प्रवृत्तिरोधिनी विद्या वगला च कुमारक ॥९॥
मन्त्रजीवनविद्या च प्राणिप्राणापहारिका।
षट्कर्माधारविद्या च ये ते पर्य्यायवाचकाः ॥१०॥

(प्रथमः पटलः)

ऐसा प्रतीत होता है कि निगमशास्त्रोक्त 'वल्गा'[३] ही आगमशास्त्रों की वगलामुखी है क्योंकि संस्कृतभाषा में जैसे 'हिंस' शब्द वर्णव्यत्यय होने के कारण 'सिंह' और लौकिक भाषा में 'मतलब' मतबल बन जाता है वैसे ही निगम की

---

१. विंशत्यर्णाधिका मन्त्रा मालामन्त्रा इति स्मृताः।
दशाक्षराधिका मन्त्रास्तदर्वाग्वीजसंज्ञिताः। (सिंहसिद्धान्तसिन्धु-पृष्ठ २९५)

२. काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ॥
वगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका।
एता दश महाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्त्तिताः ॥ (प्राणतोषिणी, पृष्ठ-७१७)

३. यदा वै कृत्यामुत्खनन्ति अथ सालसा मोघा भवति। तथो एवैष एतद्यद्यस्मा अत्र कश्चिद् द्विषन् भ्रातृव्यः कृत्यां वल्गां निखनति तानेवैतदुत्किरति ॥ (शतपथब्राह्मण-३।५।४।३)

वल्गा आगम में वगलारूप में परिणत हुई है। इसी शक्ति की आराधना के द्वारा पुरातन युगों में असुरों एवं शत्रुओं पर अभिचारादिप्रयोग किये जाते थे जैसा कि आचार्य मनु के इस वाक्य से स्पष्ट होता है—

श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः कुर्यादित्यविचारयन्।
वाक्शस्त्रं वै ब्राह्मणस्यं तेन हन्यादरीन् द्विज ॥
(मनु० ११।३३)

वगलाशब्दनिरुक्ति

कुब्जिकातन्त्र में 'वगला' शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया गया है—

वकारे वारुणी देवी गकारे सिद्धिदा स्मृता।
लकारे पृथिवी चैव चैतन्या या प्रकीर्त्तिता ॥[1]

अर्थात्—वकार से वारुणी देवी, गकार से सिद्धिदा, लकार से पृथिवी-रूपा होने से जो शक्ति चैतन्यस्वरूपा है वही वगला है।

श्रीवगलामुखी का आविर्भाव

इस महाविद्या का आविर्भाव का कारण स्पष्ट करते हुए 'स्वतन्त्र तन्त्र' कहता है कि सत्ययुग में वातक्षोभ के उत्पन्न होने पर चराचर सृष्टि के विनाश को देख कर अत्यन्त चिन्तामग्न विष्णु ने श्रीत्रिपुराम्बा की तपस्या की। तपस्या से सन्तुष्ट श्रीत्रिपुराम्बा ने सौराष्ट्र में हरिद्राख्य सरोवर में जलक्रीडा प्रारम्भ की। उस पीत सरोवर से श्रीविद्या से उत्पन्न तेज (प्रकाश) इधर-उधर अर्थात् चारों दिशाओं में फैलने लगा। उसी तेज से त्रैलोक्यस्तम्भिनी ब्रह्मास्त्रविद्या का आविर्भाव हुआ[2]।

---

१. प्राणतोषिणी पृष्ठ ७१७।

२. अथ वक्ष्यामि देवेशि वगलोत्पत्तिकारणम्।
पुरा कृतयुगे देवि वातक्षोभ उपस्थिते ॥
चराचरविनाशाय विष्णुश्चिन्तापरायणः।
तपस्यया च सन्तुष्टा महाश्रीत्रिपुराम्बिका ॥
हरिद्राख्यं सरो दृष्ट्वा जलक्रीडापरायणा।
महापीतह्रदस्यान्ते सौराष्ट्रे वगलाम्बिका ॥
श्रीविद्यासम्भवं तेजो विजृम्भति इतस्ततः।
चतुर्दशी भौमयुता मकारेण समन्विता ॥
कुलऋक्षसमायुक्ता वीररात्रिः प्रकीर्त्तिता।
तस्यामेवार्द्धरात्रौ तु पीतह्रदनिवासिनी ॥
ब्रह्मास्त्रविद्या सञ्जाता त्रैलोक्यस्तंभिनी परा।
तत्तेजो विष्णुजं तेजो विद्यानुविद्ययोर्गतम् ॥
प्राणतोषिणी—पृष्ठ ७१७ (कलकत्ता प्रकाशन)

सम्पादन

इस ग्रन्थ के संपादन में ५ हस्तप्रतियों का उपयोग किया गया है। इन प्रतियों में से ४ प्रतियाँ प्रतिष्ठान के संग्रह की हैं तथा १ प्रति जयपुर-निवासी पं० श्रीरामकृपालुजी शर्मा के संग्रह की है। प्रतिष्ठान की प्रतियों को यहां पर क. ख. ग. घ. संज्ञा से और श्रीशर्माजी की प्रति को रा० संज्ञा से संबोधित किया गया है। इस ग्रंथ के २९ वें पटल तक क. प्रति का पाठ मूलरूप में ऊपर उद्धृत कर ख. ग. घ. के पाठान्तरों को पाद-टिप्पणियों के रूप में नीचे दिया गया है तथा ३०वें पटल से ३३वें पटल तक ख. प्रति का पाठ मूल रूप में देकर ग. घ. रा० प्रतियों के पाठान्तर नीचे उद्धृत किये गये हैं क्योंकि क० और ग० प्रति त्रिंशत्पटलों में ही समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार ख प्रति यद्यपि ३५ पटलों में पूरी होती है किन्तु वस्तुतः वह ३४ पटलात्मक ही है कारण कि लिपिकर्त्ता के प्रमाद से २९वें पटल का कुछ अंश ३०वें पटल के रूप में तथा २५ पद्यात्मक ३१वें पटल को १६॥ पद्यों में ही समाप्त कर एक पृथक् पटल का रूप दे दिया गया है जिसे हमने पुस्तक में इस ( ) कोष्ठक में आबद्ध कर दिया है। ३४वें पटल से ३६वें पटल तक घ. प्रति का पाठ ऊपर मूलरूप में और रा० प्रति के पाठान्तर नीचे उद्धृत किये हैं इसका कारण यह है कि रा० प्रति इस पुस्तक के २९ पटल तक का मुद्रणकार्य पूरा हो जाने के बाद प्राप्त हुई।

इसके अतिरिक्त ख. और घ. प्रतियों में पटलों का व्युत्क्रम एवं भेद भी पाया जाता है जैसे—ख. प्रति में जो ३१, ३२ एवं ३३वें पटल हैं वे घ. प्रति में क्रमशः ३४, ३५ तथा ३६वें पटल के रूप में प्राप्त हैं और ख. प्रति का ३५वां पटल जो कि वस्तुतः ३४वां पटल है, किसी अन्य प्रतियों में प्राप्त नहीं है। ऐसी स्थिति में इस पटल को ३६वें पटल के बाद ही यहां पर स्थान दिया गया है।

अनुमित पाठ को ( ) चिह्नाङ्कित कोष्ठक में और अस्पष्ट एवं विलुप्त पाठ को [ ] चिह्नाङ्कित कोष्ठक में दिया गया है।

प्रति-परिचय

क. ग्रन्थाङ्क—९९००; लिपिकाल—१९वीं शताब्दी (विक्रम); माप—२९'×१३' से. मी.; पत्रसंख्या–३८; पंक्ति–११; अक्षर–३८; दशा सुन्दर एवं सुपाठ्य, अपेक्षाकृत शुद्ध प्रति।

ख. ग्रंथाङ्क–५५८५; लिपिकाल १९वीं शताब्दी (विक्रम); पत्र-संख्या ५१; माप–३४'५+१३' से. मी.; पंक्ति–९; अक्षर ३६; दशा–सुन्दर, सुवाच्य एवं अपेक्षाकृत शुद्ध प्रति।

ग. ग्रंथाङ्क–१८३६५; लिपिकाल–सं० १७९६ (विक्रम) पत्रसंख्या ४२; माप–२३'×१२'५ से. मी.; पंक्ति–१२; अक्षर ३३; दशा–कुछ जीर्ण, सुवाच्य किन्तु अशुद्ध।

घ. ग्रन्थाङ्क–१८३६३; लिपिकाल–१९वीं शताब्दी (विक्रम) पत्र संख्या–१२४; पंक्ति–९; अक्षर–१९; दशा–ठीक-ठीक है, सुवाच्य किन्तु अशुद्ध प्रति है।

रा० श्रीरामकृपालु शर्मासंग्रह ग्रन्थाङ्क–माप–३३'×१०'८; लिपिकाल–सं० १९२९ (विक्रम); पत्रसंख्या–४६; पंक्ति–९; अक्षर–४६; दशा–जीर्ण; सुवाच्य एवं अशुद्ध प्रति है।

आभार-प्रदर्शन

मैं राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के निदेशक समादरणीय डॉ० फतहसिंहजी का विशेष आभारी हूं जिनके सत्परामर्श एवं सत्प्रेरणा से इस अतिविलम्बित ग्रंथ का संपादन-कार्य पूर्ण कर सका। जयपुर-निवासी पं० श्रीरामकृपालुजी शर्मा का भी मैं विशेष आभार मानता हूँ जिन्होंने अपने संग्रह में से ढूंढ कर इस ग्रन्थ की प्रति हमें प्रेषित की। साथ ही मैं प्रतिष्ठान के सहयोगी विशेषतः पुस्तकालय-सहायक श्रीमती गणेशी आत्रेय एवं प्रतिलिपिकर्त्ता श्रीब्रजेशकुमारसिंह को भी साधुवादों से सत्कृत करता हूँ जिन्होंने पद्यानुक्रम बना कर मुझे सहयोग दिया। अन्त में मैं साधक विद्वानों से सनम्र प्रार्थना करता हूँ कि इस ग्रन्थ में दृष्टि-दोष एवं चित्तचाञ्चल्यवश कहीं कोई त्रुटि रह गई हो उसका वे समाधान करते हुये 'समादधतु सज्जनाः' के अनुसार मुझे क्षमा करें।

कार्तिक शुक्ल एकादशी
विक्रम संवत् २०२६

विदुषामाश्रवो
गोस्वामी लक्ष्मीनारायणदीक्षितः

विषयानुक्रमः

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठ	पङ्क्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
१६	१२	चान्य	चान्ये
१८	११	तलतैलेन	तिलतैलेन
२१	७	शातोदरी	शालोदरीं
२१	२९	विविखेत्	विलिखेत्
२४	१३	०वाक्पतिस्तुवा	०वाक्पतिस्तु वा
२७	२८	ऋषिसंख्यया	ऋषिसंख्यया।
२७	२९	सक्ष्मीवान्	लक्ष्मीवान्
३१	१७	दाभिघातेन	गदाभिघातेन
३५	१७	संस्मरेत् १६[१]	संस्मरेत्[१६]।[१७]
३८	६	लंकारं	लकारं
३८	७	ह्लैं	ह्लैं
३८	१९	गदा	ग़दां
४१	२०	मनुः[४५]	मनुः[१५]
४३	३	तन्त्रराज०	मन्त्रराज०
४५	१	०जिह्लाभेदानार्थं	०जिह्वाभेदनार्थं
५०	२०	जिह्वांस्तम्भं	जिह्वास्तम्भं
५२	५	सदाहः	स दाहः
५२	७	०मूर्ध्दनि	०मूर्द्ध्नि
५२	२३	३. घ. पुस्तस्के	३. घ. पुस्तके
६१	३	जिह्लास्तम्भन०	जिह्वास्तम्भन०
६४	१५	लक्षण	लक्षणं
६४	२५	विशेशो	विशेषो
६४	२६	तुं	तु
६७	२१	वन्यस्यतां	विन्यस्यतां
६७	२६	छन्दो त्र	छन्दोऽत्र
६८	१३	द्रावर्णदेवताम्	हरिद्रावर्णदेवताम्
६८	२४	॥२॥	॥२२॥
७२	२	अय्युतं	अयुतं
७४	२	॥६॥	॥३॥
७५	१६	ध्यानपूर्वकम्	ध्यानपूर्वकम्
७६	१३	चत्तर्पणम्	च तर्पणम्
८३	२५	ततत्फल०	तत्तत्फल०
८४	२	मण्डलांतद्०	मण्डलात्तद्०

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
८५	२२	॥२२॥	॥२३॥
८७	३०	२२. ०तद्दशांशशं च	२२. रा० ०तद्दशांशं च
८८	१६	॥१७॥	॥१८॥
८८	३१	१६. रा. तु षण्मासं	१६. रा. श्लोकार्द्धमिदं नास्ति
८९	२५	८. रा. यद्यद्वूए०	८. रा. यद्यद्व्रए०
९१	२३	परम	परम्
९२	१२	कृलिमैः	कृत्रिमैः
९२	१६	निश्चतम्	निश्चितम्
९२	२९	विशोषोऽयं	विशेषोऽयं
९३	१०	शंवि लिखेद्	शं विलिखेद्
९३	१०	चयथाक्रमम्	च यथाक्रमम्
९३	२१	नार्जयेद्	नार्चयेद्
९३	२९--३०	१५. १६. १७.	१४. १५. १६.
९६	१६	योगो यं	योगोऽयं
९७	शीर्षं	त्रयस्त्रिंशः	चतुस्त्रिंशः
९९	"	"	पञ्चत्रिंशः
१००	९	षट्त्रशः	षट्त्रिंशः
१०१	शीर्षं	द्वात्रिंशः	षट्त्रिंशः
१०३	"	चतुस्त्रिंशः	पञ्चत्रिंशः
१०४	५	मध्यमागे	मध्यभागे
१०७	२०	ॐ बीज	ॐ बीजं
११०	७	ज्वालामुख्यस्त्र०	ज्वालामुख्यस्त्र०
११०	१०	ॠष्यादि०	ऋष्यादि०
११०	१६	श्रीबहद्भानुमुख्यस्त्र०	श्रीबृहद्भानुमुख्यस्त्र०
११०	२६	ग्राह्याणि	ग्राह्याणि
११०	२९	ह्लींह्लींह्लूं वगला०	ह्लींह्लींह्लूं वगला०
११२	७	हुँ फट् स्वाहा[२]	हुँ फट् स्वाहा
११२	९	परविद्माभक्षिणी	परविद्याभक्षिणी
११३	२६	कीलव्काय	कीलकाय
११५	९	०बगलास्त्रोपसहार०	बगलास्त्रोपसंहार०
११५	१८	ॐ शिखायै	ॐ क्रूँ शिखायै
११७	१९	विघ्नैर्ना०	विघ्नैर्ना०
११८	२१	मन्त्ररूप	मन्त्ररूपं
११८	२२	ज्ञेय	ज्ञेयं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
१२०	१	फ बं	फं बं
१२२	१४	नगात्मने	नगात्मजे
१२३	७	बीज	बीजं
१२३	२४	०स्थितिध्वंसने	स्थितिध्वंसने
१२४	१५	०संस्तम्भन	संस्तम्भनम्
१२५	८	वान्त	वातं
१२५	१०	०सुदुर्लभ	सुदुर्लभं
१२५	२५	०मतीन्द्रिय	मतीन्द्रियं
१२५	२९	१ त्यपि पाठः	इत्यपि पाठः
१२६	७	हृद्य	हृद्यं
१२६	८	गोप्यतम	गोप्यतमं



सांख्यायनतन्त्रम्

॥ श्रीः ॥

सांख्यायनतन्त्रम्

—००:०:००—

॥ अथ प्रथमः पटलः ॥

श्रीशिवाय नमः ॥[1] पीतांबरायै नमः ॥[2]

मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपरत्नवेद्यां
सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम् ।
पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं[3]
देवीं भजामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम् ॥१॥

क्रौञ्चभेद उवाच—[4]

कैलाश(स)शिखरासीनं गौरीवामाङ्गसंस्थितम्[5] ।
भारतीपतिवाल्मीकि-[6]शेषसंयुतमीश्वरम् ॥२॥
अष्टदिक्पालकोशाष्ट-[7]विघ्नेशाष्टकसेवितम् ।
भैरवाष्टवृतं[8] देवं मातृमण्डलवेष्टितम् ॥३॥
महापाशुपताक्रान्तं[9] प्रमथैरावृतं प्रभुम् ।
नत्वा स्तुत्वा कुमारश्च[10] इदं वचनमब्रवीत् ॥४॥
चापचर्यासुनिपुणैर्युद्धचर्याभयङ्करैः ।
नानामायाविनां चैव[11] जेतुमिच्छामि[12] रक्षसाम्[13] ॥५॥
तस्योपायं च तद्विद्यां वद मे करुणाकर ।
पुत्रोऽहं तव शिष्योऽहं कृपापात्रोऽहमेव च ॥६॥

ईश्वर उवाच—[14]

साधु साधु महाप्राज्ञ क्रौञ्चभेदन[15]कोविद ।
ब्रह्मास्त्रेण विना शत्रुसंहारो[16] न भवेत्कलौ ॥७॥

---

१ ख.घ. श्रीगणेशाय नमः ; ग. श्रीशिवौ जयतः । २ क. पीतांबराय नमः ; घ. नास्ति । ३ ग. ०विभुषितांगीं । ४ ख.घ. क्रौंचभेदन उवाच ; ग. क्रौंचभेदनोवाच । ५ घ. ०वामाङ्कसंस्थितम् । ६ ख. ०वाल्मीकी० ; ग. ०वाल्मिकी ; घ. वाल्मीक । ७. ख.ग.घ. अष्टदिक्पालकेशाष्ट० । ८ ख.ग. भैरवाष्टकवृतं ; घ. भैरवाष्टयुतं । ९ ग. महापशुपदाक्रान्तम् ; घ. महापाशुपत्ताक्रांतं । १० घ. कुमारोपि । ११ ख. नानामायाविनश्चैव ; घ. नानामायाविनं जेतुं । १२ घ. ज्ञातुमिच्छामि । १३ ख.घ. राक्षसान् ; ग. राक्षसां । १४ ग. इश्वरोवाच । १५ घ. भेदेन । १६ क.ग.घ. शत्रुसंहारं ।

तद्विद्यां च प्रवक्ष्यामि त्रिषु लोकेषु दुर्ल्लभाम् ।
पुत्रो देयः शिरो देयं न देया यस्य कस्यचित् ॥८॥
ब्रह्मास्त्रस्तम्भिनी विद्या स्तब्धमायामनुस्तथा ।
प्रवृत्तिरोधिनी विद्या बगला च कुमारक !॥९॥
मन्त्रजीवनविद्या च प्राणिप्राणापहारिका ।
षट्कर्माधारविद्या[1] च ये ते[2] पर्य्यायवाचकाः ॥१०॥
षट्प्रयोगास्त्रयो विद्या ये विद्यागमभूषिताः ।[3]
तिरस्कृताखिला विद्या त्रिशक्तिमयमेव[4] च ॥११॥
स्तम्भनेन विना शान्तिर्वश्यञ्चैव तु तद्विना ।
मोहनाकर्षणञ्चैव विद्वेषोच्चाटनन्तथा[5] ॥१२॥
मारणं भ्रान्तिरुद्वेगकारणं[6] च कुमारक ।
विद्या च बगलानाम्नी मुनिगुह्यं सुपावनम् ॥१३॥
विना च स्तम्भिनीविद्यां "न विद्या च प्रभासते ।
तस्मादेव[7] महाविद्या[8] कमलासनजीवनम्[9] ॥१४॥
पद्मजो नारदो विद्यां" सांख्यायनमुनिं प्रति ।
उपदेशक्रमेणैव उक्तवान्मेरुकन्दरे ॥१५॥
तेन देवीकटाक्षेण कृतवानागमं भुवि ।
मूलमंत्रोपविद्याश्च[10] अङ्गमन्त्रांश्च विस्तरात् ॥१६॥
प्रयोगं चोपसंहारं[11] तदाराधनतद्गुणम्[12] ।
विस्तरेणोक्तवानस्मि वक्ष्ये तत्सर्वमादरात् ॥१७॥
स्वमन्त्राक्षरणी[13] विद्या स्वमन्त्रफलदायका[14] ।
स्वकीर्त्तिरक्षिणी विद्या शत्रुसंहारकारिका[15] ॥१८॥
परविद्याछेदनं[16] च परयन्त्रविदारणम्[17] ।
परमन्त्रप्रयोगेषु सदा विध्वंसकारकम्[18] ॥१९॥

---

१. ग. षट्कर्माहार० । २. ख.घ. एते । ३. ख. षट्प्रयोगाश्रया विद्या षड्विद्यागमभूषिताः । ४. ग. त्रिरात्रिमयमेव । घ. त्रिशक्ति खलु मेव । ५. ग. तद्वेषोचाटनं० । ६. घ. भ्रांतिमु० । "--" चिन्हान्तर्गतोंऽशः घ. पुस्तके नास्ति । ७. ख. तस्मादेतां । ८. ख. ०विद्यां । ९. ०ख. जीवनीं । १०. ग. घ. ०विद्या च । ११. ग. चोपहारं । १२. घ. ०लक्षणम् । १३. ख. स्वमन्त्ररक्षणी ; घ. स्वविद्यारक्षणी । १४. ख. ०दायिका ; ग. ० दांयकां । घ. ० दायिनी । १५. ग. ०कारकः ; घ. ०कारिणी । १६. ख. घ. ०छेदनी । १७. ख. घ. ०विदारिणी । १८. ख. ०कारिका ; घ. ०कारिणी ।

परानुष्ठानहरणं[1] परकीर्त्तिविनाशनम्[2] ।
परापजयकृद्[3] विद्या परेषां भ्रमकारणम्[4] ॥२०॥

ये वा विजयमिच्छन्ति[5] ये वा जेतुं क्षयं[6] कलौ ।
ये वा क्रूरमृगेन्द्राणां[7] क्षयमिच्छन्ति मानवाः ॥२१॥

ये(य इ)च्छन्त्याकर्षशान्त्यादि[8] वश्यं सम्मोहनादिकम् ।
विद्वेषोच्चाटनं प्रीतिं तेनोपास्यस्त्वयं मनुः[9] ॥२२॥

सत्सम्प्रदायविधिना[10] सद्गुरोर्मुखतस्तथा ।
उपदेशक्रमेणैव गृहीत्वा साधयेन्मनुम् ॥२३॥

कुलाचारसमायुक्तः[11] कुलमार्गेण पुत्रक ।
दीक्षा कुलगुरोर्योगात् गृहीतव्या सुबुद्धिना[12] ॥२४॥

साधयेत्कुलमार्गेण तेन मन्त्रं प्रयोजयेत् ।
उपसंहारणं[13] तेन कर्त्तव्यं कुलयोगिना ॥२५॥

सौभाग्यचर्यासमायुक्तं[14] सदा तर्पणपूर्व्वकम् ।
सदा पूजासमायुक्तं[15] चिन्तितं भवति ध्रुवम् ॥२६॥

ऋषिसिद्धामरैश्चैव विद्याधरमहोरगैः ।
यक्षगन्धर्वनागैश्च पिशाचब्रह्मराक्षसैः[16] ॥२७॥

पञ्चैन्द्रियैश्च सञ्चारं सद्यो नाशकरो[17] मनुः[18] ।
पिण्डजाण्डजजीवैश्च किम्पुनः क्रौञ्चभेदन[19] ॥२८॥

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे प्रथमं पटलम्[20] ॥१॥

॥ अथ द्वितीयः पटलः ॥

जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्[21] ।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि ॥१॥

---

१. ख. ०हारिणी। २. ख. ०विनाशनी। ३. घ. परापजयिनी। ४. ख. ०कारणी; ग. घ. ०कारकम्। ५. ग. विलय०। ६. ख. ग. जंतुक्षयं। ७. घ. क्रूरमृगश्चैव। ८. ख. घ. इच्छन्ति शान्तिकर्माणि; ग. येच्छन्ति शान्तिकर्माणि। ९. क. ग. ०मिद मनुः; घ. मिदं मनुं। १०. घ. तत्संप्रदाय०। ११. क. ख. समायुक्तो; १२. घ. सुबुद्धिमान्। १३. घ. उपसंहरणं। १४. ग. ०समायुक्तो। १५. ग. समायुक्तः। १६. ग. पीसाचा०। १७. क. ग. घ. नाशकरं। १८. ग. मुनिः; घ. मनुं। १९. ग. ०भेदनः; घ. भेदेन। २०. ख. ग. प्रथमपटलम्; घ. मंत्रवर्णनं नाम प्रथमः पटलः। २१. ग. परिपीडयंति।

क्रौंचभेद उवाच[१]—

नमस्ते पार्वतीनाथ नमः पन्नगकङ्कण ।
वद दीक्षाविधिं तात तत्सर्वं स्तम्भनादयः[२] ॥२॥

ईश्वर उवाच[३]—

पुस्तके लिखितान्मन्त्रानवलोक्य जपेत्तु यः[४] ।
स जीवन्नेव चाण्डालो मृतः[५] श्वानो भविष्यति ॥३॥

दीक्षामार्गं विना मन्त्रं शैवं शाक्तञ्च[६] वैष्णवम् ।
यो जपेत्तं दहत्याशु देवता च जुगुप्सति ॥४॥

दीक्षाविधिं विना मन्त्रं यो जपेत्कोटिकोटयः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति सिन्धुसैकतवर्षवत्[७] ॥५॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दीक्षां कुलगुरोर्मुखात् ।
उपदेशक्रमेणैव मन्त्रसङ्ग्रहणं चरेत् ॥६॥

वेदवेदाङ्गपारज्ञं वेदान्तार्थसुनिश्चितम् ।
वैदिकाचारसंयुक्तं कुर्याद् गुरुमतन्द्रितः ॥७॥

गर्भकौलागमासक्तं[८] नानाकौलपरायणम् ।
अष्टपाशविनिर्मुक्तं कुर्याद् गुरुमतन्द्रितः[९] ॥८॥[१०]

पुरश्चरणकृत्सिद्धमन्त्रागमविशारदम् ।
उद्धर्त्तुं चैव संहर्त्तुं समर्थं सत्यवादिनम् ॥९॥

प्रस्थानज्ञानपारीणं[११] नीतिशास्त्रार्थकोविदम् ।
श्रीविद्यामंत्रयन्त्रज्ञं कुर्याद् गुरुमतन्द्रितः[१२] ॥१०॥

चक्रपूजासमायुक्तं(क्तो)न्यासविद्याविशारदम्(दः) ।
गुरुर्यत्नाच्च[१३] कर्त्तव्यः[१४] सततं सिद्धिकांक्षिभिः[१५] ॥११॥

---

१. ख. घ. क्रौञ्चभेदन० ; ग. क्रौञ्चभेदनोवाच । २. ख. स्तंभनादिकम् ; घ. स्तंभनास्त्रयोः । ३. घ. इश्वरोवाच । ४. ख. जपेच्च यः ; ग. जपन्ति ये ; घ. जपंति यः । ५. ग. घ. मृत । ६. घ. वा शाक्त । ७. घ. सिन्धोः० । ८. घ. गुरुसेवा-समासक्तं । ९. ग. ०मतन्द्रितं । १०. श्लोकोऽयं ख. पुस्तके नास्ति; घ. पुस्तके विशेषतोऽवलोक्यतेऽयं श्लोकः—'घृणा शंका भयं लज्जा जुगुप्सा चेति पञ्चकम् । कुलं शीलं च मानं च अष्टपाशा[न्]विवर्जयेत्" ॥ ११. ख. प्रास्थान० ; घ. स्वस्थान० । १२. ग. ०मतन्द्रितम् । १३. क. घ. गुरुं० ; ग. गुरु० । १४. ग. कर्त्तव्या ; क. घ. कर्त्तव्यं । १५. घ. सिद्धिकांक्षिणः ।

गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा ।
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थं नोपलभ्यते ॥१२॥
शुश्रूषया गुरुं सम्यक् तोषयेच्छिष्य अन्वहम्[1] ।
प्रसन्नचेतसा दत्तं मन्त्रमुत्तममर्भक[2] ॥१३॥

स्वल्पं वा बहुलं चाथ शिष्यद्रव्यं गुरुः स्वयम् ।
गृहीत्वा मन्त्रमादत्ते विक्रीतं तदुदाहृतम् ॥१४॥
राजसं चैव तद्विद्याद्[3] भोगदं भुवि पुत्रक ।
विद्याप्रतिनिधिं विद्या[द्] यद्दत्तं[4] तामसं मतम्[5] ॥१५॥

मोक्षार्थी च गुरुं यत्नात् शुश्रूषेणैव तोषयेत् ।
शुश्रूषेणैव यल्लब्धं[6] तद्विद्यात्[7] सर्वसिद्धिदम्[8] ॥१६॥

नो देयं (या)[9] विद्यया विद्या वित्तकांक्षी तथैव च ।
सच्छिष्याय प्रदातव्यं[10] धनदेहाद्यवञ्चकैः ॥१७॥

दुरालापसमायुक्तं दुर्गुणेन समन्वितम् ।
सर्वथा वर्ज्जयेच्छिष्यं स्वगुरोर्वाभिमानिनम्[11] ॥१८॥

अष्टपाशसमायुक्तं भ्रष्टाचारसमन्वितम् ।
सर्वदा वर्जयेच्छिष्यं गुरुसेवाविवर्ज्जितम्[12] ॥१९॥[13]

निर्मत्सरं निरालम्बं नीतिशास्त्रविशारदम् ।
नित्यानित्यविवेकं च शिष्यत्वेनोपकल्पयेत् ॥२०॥

श्रद्धाभक्तिसमोपेतं धनदेहाद्यवञ्चितम्[14] ।
अष्टपाशविनिर्मुक्तं शिष्यत्वेनोपकल्पयेत् ॥२१॥

गुरुशिष्यावुभौ मोहादपरीक्ष्य[15] परस्परम् ।
उपदेशं ददन् गृह्णन् प्राप्नुयात्तौ पिशाचताम् ॥२२॥

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे द्वितीयं पटलम्[16] ॥

---

१. ख. तोषयेच्छ्रेष्ठमन्वहम्; ग. तोषयेच्छिष्यमन्वहम्; घ. संतोष्याभीष्टसिद्धिदम् । २. ख. ०मर्भकः । ३. क.ख.ग. तद्विद्या । ४. घ. तद्दत्तं । ५. घ. स्मृतम् । ६. ग. यल्लभ्यं; घ. यं लब्ध्वा । ७. क. ग. तद्विद्या; घ. सा विद्या । ८. घ. सर्वसिद्धिदा । ९. ग. नोपदेय । १०. घ. प्रदातव्या । ११. घ. गुरुसेवाभिमानिनम् । १२. ग. घ. गुरुसेवाभिमानिनम् । १३. घ. पुस्तके विशेषोऽयं श्लोकः—

'कामुकं काञ्चनासक्तं करुणालयवर्जितम् ।
सर्वदा वर्जयेच्छिष्यं गुरुसेवाभिमानिनम्' ॥

१४. ख. घ. ०वञ्चकम् । १५. ख. ०दपरोक्ष्य; ग. ०दपराक्ष । १६. ख. घ. द्वितीयः पटलः ।

॥ अथ तृतीयः पटलः ॥

चलत्कनककुण्डलोल्लसितचारुगण्डस्थलां[1]
लसत्कनकचम्पकद्युतिमदिन्दुविम्बाननाम् ॥
गदाहतविपक्षकां कलितलोलजिह्वाञ्चलां[2]
स्मरामि बगलामुखीं विमुखवाङ्मुखस्तम्भिनीम्[3] ॥१॥

क्रौञ्चभेद उवाच—[4]

पूजाधारणयन्त्रज्ञ[5] सर्वमन्त्रविशारद ।
अभिषेकविधिं तात वद मे करुणाकर ॥२॥

ईश्वर उवाच[6]**—**

आश्विने कार्त्तिके चैव[7] चैत्रमासे[8] कुमारक ।
कुर्युस्तमभिषेकं[9] च मानवाः[10] सिद्धिकांक्षिणः[11] ॥३॥

रवौ गुरौ भृगावब्जवासरे[12] च कुमारक ।
मन्त्राभिषेकं कर्त्तव्यं सततं सिद्धिकांक्षिभिः ॥४॥

रोहिणीश्रवणे चैव पुष्ये[13] चैव विशाखयोः ।
मन्त्राभिषेकं कर्त्तव्यं सद्यः[14] सिद्धिकरं भुवि ॥५॥

एवं शुद्धदिने[15] सम्यक् पूर्वेऽह्नि[16] समुपोषितम् ।
स्नापयेत्पञ्चगव्येन ततश्चामलकेन तु ॥६॥

ततः शिष्यं समानीय[17] देवतासन्निधौ पुनः ।
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं गायत्रीजपमाचरेत्[18] ॥७॥

देवस्येशानभागे तु गोमयेनोपलेपितम्[19] ।
रङ्गवल्ल्या लिखेद्यन्त्रं रक्तपीतसितासितैः ॥८॥

---

१. ग. पुस्तके 'चलत्कनककुण्डलो' इत्यस्मादग्रेतनपदांशो नास्ति । घ. चलत्कनककुण्डलां लसत्० । २. घ. कलितवैरि० । ३. ख. घ. विमुखवाङ्मनः । ४. ख. घ. क्रौञ्चभेदन उवाच; ग. क्रौञ्चभेदनोवाच । ५. क. पुस्तके 'पूजा' स्थाने 'पूज्य' एवं च ख. पुस्तके 'यन्त्रज्ञ' स्थाने 'यन्त्रज्ञं' इति शब्दो स्तः । ६. ग. पुस्तके 'क्रौञ्चभेदनोवाच' तथा च 'ईश्वरोवाच' इत्येवायं प्रयोगः सर्वत्र दृश्यते; अतोऽग्रे एतच्छब्दयो रेष एव पाठान्तर ऊहनीयो विद्वद्भिरिति · ७. ख. चैत्रे । ८. ख. वैशाखे तु । ९. ख. ग. कर्त्तव्यमभिषेकं; घ. कर्त्तव्यं चाभिषेकं । १०. ख. ग. मानवैः । ११. ख. ग. सिद्धिकांक्षिभिः । १२. ग. भृगा[वि]दौ०; घ. भृगौ इंदु० । १३. ग. स्वार्सी । घ. सार्पं । १४. ग. सर्वं । १५. ग. सिद्धिदिने । १६. ग. पूर्वेवह्नि; घ. पूर्वाह्णे । १७. ग. घ. समानीत्वा । १८. घ. गायत्रीं वेदमातरम् । १९. क., ग. ०लेपिताम्; ख. ०लेपयेत् ।

षोडशाङ्गुलमानं[1] तु लिखेद् बिन्दुमनन्यधीः ।
ततो(तदु)परि लिखेद् वृत्त[2]मष्टपत्रं तु शोभनम् ॥९॥
प्रियङ्गुशालिगोधूमचरणकाटकमाषकैः[3] ।
कुलत्थमुद्गनीवारैः[4] क्रमान्मध्यादि विन्यसेत् ॥१०॥
प्रस्थं चैव चतुर्विंशं प्रत्येकं धान्यमेव च ।
अव्रणं स्थूलकलशं मध्ये संस्थाप्य बुद्धिमान् ॥११॥
अष्टपत्रे[5] न्यसेत्पुत्र कलशाष्टकमादरात् ।
क्षालितं वासितं[6] शुद्धं कलशं च समर्पयेत्[7] ॥१२॥
षोडशैरुपचारैश्च धूपाद्येनैव[8]विन्यसेत् ।
आपोवानेन पूर्येत नदीजलमकल्मषम् ॥१३॥
निःक्षिपेन्नवभाण्डेषु नवरत्नान् कुमारक ।
कस्तूरीचन्दनोपेतान्[9]नवभाण्डेषु निःक्षिपेत् ॥१४॥
मध्ये देवीं समावाह्य चिन्मयीं बगलामुखीम् ।
प्राणस्थापनमार्गेण केरलोक्तविधानतः ॥१५॥
वाणी चैव रमा गौरी शची स्वाहा रतिस्तथा ।
दुर्गा छाया[10] समभ्यर्च्य पूर्वाद्यष्टकपत्रयोः[11] ॥१६॥
अर्चयेत्पूर्ववत्पुत्र केरलोक्तविधानतः ।
नवीननवसंख्याकवस्त्रेणैव तु वेष्टयेत् ॥१७॥
सुगन्धपत्रपुष्पादीन्[12] विन्यसेत्कलशान्तरे ।
तत्र शिष्यं[13] समानीत्वा(य)ऋत्विग्वरणमाचरेत् ॥१८॥
वेदवेदांगपारीणमष्टौ[14] ब्राह्मणमादरात् ।
प्रार्थयेद्युग्मसंयुक्त[15]मर्चयेद्वस्त्रभूषणैः ॥१९॥
शाकुनादिषु मन्त्रेषु प्रथमं कलशमार्जनम्[16] ।
लक्ष्मीसूक्तेन श्रीयुक्तं[17] द्वितीयं कलशन्तथा[18] ॥२०॥

---

१. ख. ०माने । २. ख. ०पद्म । ३. ग. घ. चणकाढकंमाषकौ । ४. घ. ०नीवारा । ५. ख. अत्र पत्रे । ६. क. चासितं । ७. ख. ग. घ. समर्चयेत् । ८. घ. धूपाद्यैः परि । ९. घ. ०चन्दनोपेत । १०. घ. पुस्तके वाण्यादिशब्दा द्वितीयान्ता दृश्यन्ते । ११. घ. पूर्वाद्यष्टकसिद्धयः । सुगन्धि पुत्र० ; घ. सुगंधं पुत्र पुष्पादि । १३. ग. शिषां । १४. घ. ०पारीणानष्टौ । १५. घ. ०दर्घ्यसंयुक्त० १६. घ. कुम्भमार्जनम् । १७. घ. श्रीयुक्तैः । १८. घ. कुम्भमार्जनम् ।

पौरुषेणैव सूक्तेन तृतीयं कलशं तथा[1] ।
नारायणानुवाकेन[2] चतुर्थं रुद्रसूक्तकैः[3] ॥२१॥
पञ्चब्रह्ममयैर्मन्त्रैः[4] पञ्चमं कलशं तथा ।
षष्ठं चाम्भस्यवारेण[5] ब्रह्मपल्ल्या च[6] सप्तमम् ॥२२॥
अष्टमं कठवल्ल्या[7] च मार्जयेन्मन्त्रकोविदः[8] ।
मध्यमं[9] पूर्वकलशं[10] मूलमंत्रेण[11] मार्जयेत् ॥२३॥
एवञ्च मार्जनं कृत्वा नवीनैर्वस्त्रभूषणैः ।
अलंकृत्वा तु शिष्यं[12] तमानीय[13] मण्डपान्तरे ॥२४॥
वामोरूपरि विन्यस्य मूर्द्धनि चाघ्राय सादरात् ।
एकैकं च पुरश्चर्यामूलमन्त्रं कुमारक ॥२५॥
स हिरण्योदके पूर्वं दद्याच्छिष्याय पुत्रक ।
स्वहृत्कमलमध्यस्था विद्यां ज्योतिर्मयीं पुनः ॥२६॥
शिष्यस्य हृदयं चैव प्रविशन्तीति भावयेत् ।[14]
तद्वच्छिष्यस्तु[15] संभाव्य गुरुं यत्नेन तोषयेत् ॥२७॥
एवं मन्त्राभिषेकञ्च[16] कुर्याद् ब्रह्मास्त्रविद्यया ।
सद्यः[17] सिद्धिर्भवेत्पुत्र पुरश्चर्यां विना[18] भुवि ॥२८॥

इति षड्विद्यागमे[19] सांख्यायनतन्त्रे तृतीयं पटलम्[20] ॥३॥

---

१. घ. कुम्भमार्जनम् । २. ख. ०नुवाक्येन; ग. नुजाकेन ; घ. पादांशो नास्ति । ३. ख. ग. कलशं तथा ; घ. कुम्भमार्जनम् । ४. घ. ०ब्रह्ममयी० । ५. ख. चाभंस्य चारेण ; घ. चांबस्य पारेण । ६. ख. ग. ब्रह्मवल्ल्या च ; घ. ब्रह्मवल्ल्या तु । ७. ख. ग. कंठवल्ल्या ; घ. भृगुवल्ल्या । ८. घ. अथवा कठकेन च । ९. घ. मध्यस्थं । १०. ग. घ. पूर्णकलशं । ११. घ. मुक्तमंत्रेण । १२. घ. तच्छिष्यं । १३. घ. आनीत्वा । १४. घ. पुस्तकेऽयं विशेष पाठः—

"तत्प्रयोगं तत्र उक्त्वा तन्मंत्राणां पदे पदे ।
षष्ठक्रमोदकं कृत्वा प्रत्येकं च विभावयेत् ॥
विद्यारूपे भवेत् पुत्र साम्राज्यं परिवेष्टयेत् ।"

१५. घ. तद्वच्छिष्यं तु । १६. घ. मन्त्राभिषिक्तं च । १७. घ. सर्वं । १८. घ. पुरश्चर्यादिना । १९. ख. ०गमरहस्ये । २०. घ. ०दीक्षाविधिर्तृतीयपटलः ।

॥ अथ चतुर्थः पटलः ॥

पीयूषोदधिमध्यचारुविलसद्रत्नोज्ज्वले मण्डपे,
श्रीसिंहासनमौलिपातितरिपुप्रेतासनाध्यासिनीम् ।
स्वर्णाभां करपीडितारिरसनां भ्राम्यद्गदां बिभ्रतीं,
स्वप्ने[1] पश्यति तस्य यांति विलयं सद्योऽम्ब[2] सर्वापदः ॥१

क्रौञ्चभेद(दन) उवाच—

गङ्गाधर नमस्तेऽस्तु गौरीपति[3] नमो नमः ।
ब्रह्मास्त्रमन्त्रसंध्यां च वद मे करुणाकर ॥२॥

ईश्वर उवाच—

मन्त्रमध्यापयेत्[4] सम्यक् शिष्यस्य गुरुरादरात् ।
तदारब्धं[5] तु तन्मन्त्रं[6] मन्त्रसन्ध्यां समाचरेत्[7] ॥३॥

तन्मन्त्रसंध्यां वक्ष्यामि शरजन्मन् समासतः ।
मन्त्रसन्ध्याविहीनस्य सर्वं तन्निष्फलं भवेत् ॥४॥

पञ्चाङ्गविधिना स्नात्वा मन्त्रस्नानमनन्तरम्[8] ।
ततः स्नायादङ्गमन्त्रैर्मूलेनैव तु मार्जयेत् ॥५॥

धौतवस्त्रं परीधाय स्वगृह्योक्तविधानतः ।
नित्यकर्म समाप्याथ मन्त्रसंध्यां समाचरेत् ॥६॥

अङ्कुशेनैव मुद्रायाः[9] सूर्यमण्डलगं जलम् ।
आनयेत्तोयमध्ये तु ध्यानयोगेन बुद्धिमान् ॥८॥

आवाहिनी स्थापनी च सन्निधानमतः[10] परम् ।
सन्निरोधनमुद्रा च सम्मुखी प्रार्थनी तथा ॥८॥
एता मुद्राश्च ततो[11] दर्शयेत्साधकोत्तमः ।
शोधयेदङ्कुशेनादौ[12] चामृतीकरणं[13] ततः[14] ॥९॥
तज्जलं वामचुलुके गृहीत्वा साधकोत्तमः ।
मूलेनैव त्रिधामन्त्र्य अष्टपत्राम्बुजं लिखेत् ॥१०॥

---

१. घ. यस्त्वां । २. ग. सद्योप । ३. ख. ग. घ. गौरीप्रिय । ४. घ. मंत्रसंध्यापंयेत् । ५. ख. घ. तदारम्य । ६. ख. घ. तन्मन्त्रैः । ७. घ. समाचर । ८. घ. ०मतः परम् । ९. ख. मुद्रयाः अंकुशेनैव । १०. क. सन्निध्यानमतः । ग. सन्निधापनीतः । ११. ख. सततं । घ. तत्तोये । १२. घ. नादा । १३. घ. वामृती० । १४. घ. तथा ।

मध्ये एकाक्षरीमन्त्रं बगलानाम्नि पुत्रक ।
वेदसंख्यामन्त्रवर्णान्[1] सप्तपत्रे[2] क्रमाल्लिखेत् ॥११

अन्त्यपत्रे चाष्टवर्णां[3]ल्लिखेन्मूलमनुं तथा ।
पुनरेकाक्षरं मन्त्रं त्रिसप्तमभिमन्त्रयेत्[4] ॥१२॥

तेन मूलेन सम्मार्ज्य मार्जनक्रमतोऽर्भक ।
तन्मार्जनविधिं वक्ष्ये ऐहिकामुष्मिकेषु च[5] ॥१३॥

त्रिधा मूर्द्धनि द्विधा बाह्वोस्त्रिधा हृन्नाभिदेशयोः ।
द्विधा पादेषु सम्मार्ज्य सौम्यकर्मस्वयं[6] क्रमः[7] ॥१४॥[8]

एवञ्च मार्जनं कृत्वा गायत्र्या बगलाह्वया ।
अर्घ्यत्रयञ्च निक्षिप्य हृदि संभाव्य देवताम् ॥१५॥

मूलेन मन्त्रितं तोयं त्रिवारञ्च त्रिधा क्षिपेत्[9] ।
एवमेव त्रिकालञ्च मन्त्रसन्ध्यां समाचरेत् ॥१६॥

उपस्थानं त्रिकालस्य वक्ष्येऽहं क्रौञ्चभेदन ।
उपस्थानं विना सन्ध्या निष्फला[10] नात्र संशयः ॥१७॥
गम्भीरां च मदोन्मत्तां स्वर्णकान्तिसमप्रभाम् ।
चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम् ॥१८॥

मुद्गरं दक्षिणे पाशं वामे जिह्वां च बिभ्रतीम्[11] ।
पीताम्बरधरां सौम्यां दृढपीनपयोधराम् ॥१९॥

हेमकुण्डलभूषाङ्गीं पीतचन्द्रार्द्धशेखराम् ।
पीतभूषणभूषाङ्गीं स्वर्णसिंहासने स्थिताम् ॥२०॥[12]

एवं ध्यात्वा तु देवेशीं[13] प्रातः सन्ध्यां समाचरेत् ।
उपस्थानं प्रवक्ष्यामि मध्याह्नस्य[14] कुमारक ॥२१॥

दुष्टस्तम्भनमुग्रविघ्नशमनं दारिद्र्यविद्रावणम्,
भूभृत्स्तंभनकारणं मृगदृशां चेतःसमाकर्षणम् ।

---

१. घ. देवसंख्या । २. क. घ. सप्तपत्रैः ३. घ. अन्त्यषृपत्रे अष्टार्णां । ४. ख. त्रिःसप्त० । ५. ख. वा । ६. ख.ग. ०कर्मेष्वय । घ. मार्गेष्वयं । ७. घ. क्रमात् । ८. घ. पुस्तके विशेषः पाठः

"पादादिमूर्द्धनिपर्यन्त क्रूरकर्मेषु मार्जयेत्" ।

९. ख. घ. पिबेत् । ग. पुनः । १०. घ. निष्फलं । ११. क. विभ्रकम् । ग. घ. वज्रकम् । १२. घ. पुस्तकेऽयमंशो विशेषः—

"रत्नसिंहासनां वन्दे देवीं त्रैलोक्यसुन्दरीम्" ।

१३. ग. देवेशि । घ. देवेशं । १४. घ. मध्याह्ने च ।

सौभाग्यैकनिकेतनं मम दृशोः कारुण्यपूर्णेक्षणं[1] ,
विघ्नौघं बगले हर प्रतिदिनं कल्याणि तुभ्यं नमः ।।२२।।
एवं मध्यंदिनोपास्थि[2] कुरु[3] कर्म सुपुत्रक[4] ।
'उपस्थानं प्रवक्ष्यामि'[5] सायाह्नस्य कुमारक ।।२३।।
मातर्भञ्जय मद्विपक्षवदनं जिह्वाञ्चलां कीलय
ब्राह्मी मुद्रय[6] मुद्रयाशु धिषणामंघ्र्योर्गतिं स्तम्भय ।
शत्रूंश्चूर्णय चूर्णयाशु गदया गौराङ्गि पीताम्बरे[7],
विघ्नौघं बगले हर प्रतिदिनं कल्याणि तुभ्यं नमः ।।२४।।
सायमौपास्थि[8]कर्तव्यमेवमेव[9] कुमारक ।
विघ्नग्रहविनाशाय[10]एवं ध्यायेज्जगन्मयीम्[11] ।।२५।।
मन्त्रसन्ध्यां विना मन्त्रं कोटिकोटि जपन्ति ये[12] ।
न भवेन्मौनसिद्धाद्यै[13]र्मन्त्रसिद्धिः कुमारक ।।२६।।
त्रिकालमाचरेत्सन्ध्यामुपस्थानं तथैव च ।
सहस्रं च जपेन्नित्यं सिद्धिः षण्मासतो भवेत् ।।२७।।
पूर्वोक्तविधिवत्संध्यां कृत्वा चाष्टोत्तरं जपेत् ।
यं यं वापि स्मरन्[14] पुत्र तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ।।२८।।
सन्ध्यामन्त्रेषु सर्वेषु[15] अङ्गमेव कुमारक ।
न प्रसिद्ध्यत्यङ्गहीनं[16] तस्मात्सन्ध्यां समाचरेत् ।।२९।।

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतंत्रे चतुर्थं पटलम्[17]।।४।।

।। अथ पञ्चमः पटलः ।।

पीतवर्णां मदाघूर्णां समपीनपयोधराम् ।
चिन्तयेद् बगलां देवीं स्तंभनास्त्राधिदेवताम् ।।१।।

क्रौंचभेदन उवाच—

नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ भस्मोद्धूलितविग्रह ।
एकाक्षरीमहामन्त्रं बगलाख्यं महाप्रभो[18] ।।२।।

---

१. ख. कारुण्यपूर्वेक्षणं । २. घ. ०पास्ति । ३. घ. क्रूर । ४. घ. पुस्तके विशेषः पाठः—
"उपस्थानं चैवमेतत्कर्त्तव्यं विधिवन्नरः" ।
५. '–' चिह्नगतोंऽशो नैवास्ति घ. पुस्तके ।
६. ग. पुस्तके नास्ति । ७. घ. पीताम्बरी । ८. घ. ०मौपास्ति । ९. घ. ०मन्हीमेव । १०. घ. ०विनाशे च । ११. घ. ध्यायं० । १२. घ. जपेन तु । १३. घ. ०मौनिसिद्धाद्यै । १४. घ. स्मरेत् । १५. घ. पूर्वेषु । १६. ख. न च सिद्ध्यंत्यंगहीना । १७. घ. ०सन्ध्याविधिर्नाम चतुर्थः पटलः । १८. घ. वद प्रभो ।

ईश्वर उवाच—

तत्तदेकाक्षरीबीजं तत्तन्मन्त्रेषु जीवनम् ।
उत्तमं बीजमुक्तं[1] च मन्त्रसर्वार्थसाधनम्[2] ॥३॥
नानामन्त्रेषु मन्त्रं वा बीजाढ्यं[3] सर्वसिद्धिदम् ।
निर्बीजमेव निर्वीर्यं शिवस्य वचनं यथा[4] ॥४॥[5]
तद्बीजोद्धारमनघं[6] सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
पूजनं[7] च प्रयोगं च वक्ष्येऽहं तव पुत्रक ॥५॥
सान्तं रान्तसमायुक्तं चतुर्थस्वरसंयुतम् ।
रेफाक्रान्तं बिन्दुयुक्तं ब्रह्मास्त्रैकाक्षरं(रो) मनुः[8] ॥६॥
ब्रह्मा ऋषिश्च छन्दोयं(न्दोऽस्य)गायत्री समुदाहृतम् ।
देवता बगला नाम[9] शक्तिश्चिन्मयरूपिणी ॥७॥
लँ बीजं ह्लीं च शक्तिश्च ईं कीलकमुदाहृतम् ।
न्यासविद्यां प्रवक्ष्यामि मन्त्रसिद्धिकरं[10] नृणाम् ॥८॥
भूशुद्धिं भूतशुद्धिञ्च मातृकाद्वितयं न्यसेत् ।
पञ्चाक्षरेण[11] विन्यस्य तद्विधिं शृणु पुत्रक ॥९॥
नेत्रबाणं पुनः पञ्च नव पञ्चदशाक्षरम् ।
विन्यसेदंगुलीभिश्च षडङ्गेषु तथैव च ॥१०॥
वक्ष्येऽहं पञ्जरं न्यासं मन्त्रसिद्धिकरं नृणाम् ।
बगला पूर्वतो रक्षेदाग्नेय्यां च गदाधरी ॥११॥
पीताम्बरा[12] दक्षिणे च स्तम्भिनी चैव नैरृते[13] ।
जिह्वाकीलिन्यतो रक्षेत्[14] पश्चिमे सर्वतोमयी[15] ॥१२॥
वायव्ये च मदोन्मत्ता कौबेरे[16] च त्रिशूलिनी ।
ब्रह्मास्त्रदेवतैशान्ये[17] पाताले स्तंभमातरः[18] ॥१३॥

---

१. घ. बीजयुक्तं । २. घ. मंत्रं सर्वार्थसाधकम् । ३. घ. बीजाज्यं । ४. घ. तथा ५. घ. अयमंशो विशेषः—'एकाक्षरी बगला उद्धारं' । ६. ख. ०मनघ । ७. ग. योजनं । ८. ख. मनुम् । ९. ख. घ. नाम्नी । १०. ख. ०सिद्धिकरीं । ११. ख. घ. मन्त्राक्षरेण । १२. घ. पीताम्बरी । १३. घ. नैरृंतो । १४. घ. जिह्वा कीलयतो रक्षो । १५. ख. सर्वचिन्मयी । ग. सर्वंतामयि । घ. सर्वंतोमयि । १६. घ. कौबेर्यां । १७. ख. घ. ०देवतेशान्ये । १८. घ. पातालस्तम्बमातृकः ।

ऊर्द्ध्वं रक्षेन्महादेवी जिह्वास्तम्भनकारिणी ।
एवं दश दिशो रक्षेद् बगला सर्वसिद्धिदा ॥१४॥

एवं न्यासविधिं कृत्वा यत्किञ्चिज्जपमाचरेत् ।
तस्य संस्मरणादेव[1] शत्रूणां स्तम्भनं भवेत् ॥१५॥

सर्वं[2] न्यासविधिं कृत्वा बगलामातृकां न्यसेत् ।
तन्मातृकाविधिं वक्ष्ये सारात्सारतरं तथा ॥१६॥

तारञ्च मातृकावर्णं[3] बगलाबीजमेव च ।
नमोऽन्तेन च विन्यस्य मातृकास्थानतोऽनघ ॥१७॥

ध्यानेन[4] मन्त्रसिद्धिः स्याद् ध्यानं सर्वार्थसाधनम्[5] ।
ध्यानं विना भवेन्मूकः सिद्धमन्त्रोऽपि पुत्रक ॥१८॥

वादी मूकति रङ्कति क्षितिपतिर्वैश्वानरः शीतति,
क्रोधी शांतति दुर्जनः सुजनति क्षिप्रानुगः खञ्जति ।।
गर्वी खर्वति सर्वविच्च जडति त्वद्यंत्रिणा[6] यन्त्रितः[7],
श्रीनित्ये बगलामुखि प्रतिदिनं कल्याणि तुभ्यं नमः ॥१९॥

एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं[8] तत्वलक्षं सुबुद्धिमान् ।
गुडोदकेन सन्तर्प्य तद्दशांशं कुमारक ॥२०॥

त्रिकोणकुण्डे जुहुयाद्धस्तनिम्नोन्नते शुभे ।
हयारिकुसुमेनैव सरक्तेनाज्यसंयुतम्[9] ॥२१॥

ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात् तत्वसंख्या तु युग्मकम् ।
मन्त्रसिद्धिर्भवेत्पुत्र नान्यथा शिवभाषितम्[10] ॥२२॥

वाममार्गक्रमेणैव वामामभ्यर्च्य पुष्पिणीम् ।
मन्त्रसिद्धिकरं चैतत्[11] सर्वदा रिपुनाशनम् ॥२३॥

परमन्त्रप्रयोगेषु नानाकृत्त्रिमचेटकैः ।
सद्यः स्तम्भनविद्या च[12] बगला च न संशयः ॥२४॥

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे पंचमं पटलम्[12] ॥४॥

१. घ. ०ह्येव । २. ग. घ. सर्वं । ३. ख. मातृकावर्णः । ग. मातृकावर्णं । ४. घ. न्यासेन । ५. घ. ०साधकम् । ६. ग. त्वद्यंत्रिणां । घ. त्वद्यंत्रिणो । ७. घ. यंत्रितो । ८. घ. जपेन्मूलम् । ९. ख. सरक्तेन्याज्य० । ग. सरक्तेनाह्य० । १०. घ. शिवभाषणम् । ११. घ. चैव । १२. ख. स्तंभनकृद्विद्या । घ. स्तंभनविद्यादि । १३. ग. ०एकाक्षरमंत्रकथनं नाम पञ्चमः पटलः ।

।। अथ षष्ठः पटलः ।।

पाठीननेत्रां[1] परिपूर्णवक्त्रां[2] पञ्चेन्द्रियस्तम्भनचित्तरूपाम् ।
पीताम्बराढ्यां पिशितासनां[3] सदा भजामि संस्तम्भनकारिणीं सदा ।।१।।

क्रौञ्चभेदन उवाच—

नमस्ते योगिसंसेव्य नमः कारुणिकोत्तम ।
एकाक्षरीमहामन्त्रप्रयोगं[4] वद शङ्कर ।।२।।

ईश्वर उवाच—

उत्तमं कुण्डहोमञ्च स्थण्डिलञ्चैव मध्यमम्[5] ।
स्थण्डिलेन विना होमं निष्फलं भवति ध्रुवम् ।।३।।

षट्कोणं चाष्टकोणञ्च चतुष्कोणं कुमारक ।
त्रिविधं स्थण्डिलं चैव वक्ष्येऽहं कुरु आदरात् ।।४।।

लक्ष्मी(:)शान्तिस्तथा पुष्टिर्विघ्नाविघ्ननिवारणैः[6] ।
चतुरस्रे हुनेत्कुण्डे तन्त्रवित् परिशोधिते ।।५।।

वशीकरणसम्मोहे वाणिज्ये द्रव्यसंग्रहे ।
कीर्त्तिकामस्तु जुहुयाद्भृगाकारे च कुण्डके[7] ।।६।।

दशेन्द्रियस्तंभने तु दिव्यैर्गन्धैस्तथैव च ।
त्रिकोणकुण्डे जुहुयाद् गुरुमार्गेण बुद्धिमान् ।।७।।

विद्वेषणे तु जुहुयाद्वर्त्तुले कुण्डमध्यमे[8] ।
उच्चाटने तु जुहुयात् षट्कोणाख्ये तु[9] कुण्डके ।।८।।

मारणे चाष्टकोणे तु कतत्तत्कर्मानुसारतः[10] ।
तत्तद्द्रव्येण जुहुयात्तत्तद्ग्रन्थोक्तमेव च ।।९।।

वक्ष्येऽहं स्थण्डिलैर्होमं[11] षट्कर्मसु[12] कुमारक ।
जुहुयाच्छान्तिवश्येषु स्थण्डिले चतुरस्रके ।।१०।।

विद्वेषणे स्तम्भने च जुहुयादष्टकोणके ।
मारणोच्चाटने पुत्र षट्कोणेषु विधीयते ।।११।।

---

१. ग. पाटिन नेत्रां । घ. भालेन नेत्रां । २. घ. ०गात्रां । ३. ख. ग. पिशिताशनां । घ. पिशिनीं । ४. ग. घ. ०महामंत्रं० । ५. घ. स्थंडिलं मध्यमं तथा । ६. ग. घ. विद्या विघ्न० । ७. क. कुण्डले । ८. घ. कुण्डमध्यगे । ९. घ. च । १. ग. तत्तत्कामा० ११. ख. घ. स्थंडिले होमं । १२. ख. ग. षट्कर्मेषु ।

प्रादेशं शतहोमे च[1] अरत्निश्च सहस्रके ।
हस्तं चायुतहोमेषु[2] द्विहस्तं लक्षहोमके ॥१२॥

गुणहस्तं कोटिहोमे[3] कुण्डं निम्नोन्नतं सुत[4] ।
स्थण्डिलस्य च[5] वक्ष्यामि तान्त्रिकोक्तस्य लक्षणम् ॥१३॥

अरत्निर्हस्तमात्रं च द्विरत्निश्च द्विहस्तयोः[6] ।
शतं सहस्रमयुतं लक्षहोमेष्वयं क्रमः ॥१४॥

सर्वत्रैवोन्नतं पुत्र प्रादेशं स्थण्डिलक्रमम्[7] ।
लक्षणं[8] स्थण्डिलैः[9] कुण्डै[10]र्न ज्ञात्वा निष्फलं हुतम् ॥१५॥

शान्तिवश्यस्तम्भनानि विद्वेषोच्चाटनं तथा ।
मारणान्तानि शंसन्ति षट्कर्माणि मनीषिणः ॥१६॥

नानारोगैः कृत्रिमैश्च नानाचेटकमेव च ।
विषभूतप्रयोगेषु निरासः[11] शान्तिरुच्यते[12] ॥१७॥

वश्यं जनानां सर्वेषां वात्सल्यं हृद्गतं स्मृतम् ।
स्तम्भनं रोधनं पुत्र सर्वकर्मसु निष्फलम्[13] ॥१८॥

मैत्रस्य[14] कलहोत्पत्तिर्विद्वेषणमुदाहृतम्[15] ।
चलबुद्धिभ्रमेणोक्तमुच्चाटनमिदम्भुवि ॥१९॥

प्राणिनां प्राणहरणं मारणं समुदाहृतम् ।
प्रत्येकमेषां वक्ष्यामि होमयोगं सुनिश्चितम् ॥२०॥

दूर्वाहोमं त्रिमध्वक्तं जुहुयादयुतत्रयम् ।
रोगहन्ता[16] ग्रहादिभ्यः सद्यः शान्तिकरं भवेत् ॥२१॥

सुमन्त-[17] कुसुमैराज्यं[18] क्तं बाणायुतं तथा ।
जुहुयान्निशि काले च वश्यं सम्मोहनं[19] भवेत् ॥२२॥

बिभीतकसमिद्भिर्वा करञ्जैर्बीजमेव च ।
नेत्रायुतं हुनेत्पुत्र स्तम्भनं परमं मतम्[20] ॥२३॥

---

१. घ. तु । २. घ. चायुतहोमे तु । ३. घ. कोटिहोमं । ४. घ. तथा । ५. ग. प्र । ६. ख. द्विहस्तकम् । ७. घ. स्थण्डिलं क्रमात् । ८. ख. लक्षणैः । ९. ख. स्थंडिलं । घ. स्थंडिले । १०. ख. कुण्डं । ११. क. घ. निराशः । १२. क. ०मुच्यते । १३. घ. निश्चितम् । १४. ख. मित्रस्य । १५. ख. ०विद्वेषं च मुदा० । १६. ख. रोगकृत्वा । १७. ख. स्यमन्त । घ. शामंत । १८. ष. राज्यैः । १९. घ. मोहनकं । २०. घ. परम् ।

निम्बार्कपत्रहोमेन निम्बतैलेन मिश्रितम् ।
नेत्रायुतेन विद्वेषं भवेत्पाषाणयोरपि ॥२४॥
उलूककाकयोः पत्रैर्बाणायुतमखण्डिभिः ।
जुहुयाच्च ततो रात्रौ भवेदुच्चाटनं सुत ॥२५॥
तिलतैलसमायुक्तं[1] शाल्मलीकुसुमं[2] तथा ।
लक्षमेकं हुनेद्रात्रौ प्रेताग्नौ प्रेतकानने ॥२६॥
नग्नः प्रेतमुखे[3] भौमे[4] प्रेतकाष्ठेन[5] बुद्धिमान् ।
मृकण्डुसदृशं[6] चैव मारणं भवति ध्रुवम् ॥२७॥

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे षष्ठं पटलम्[7] ॥६॥

॥ अथ सप्तमः पटलः ॥

पीताम्बरधरां देवीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
वामे जिह्वां गदां चान्य धारयन्तीं भजाम्यहम् ॥१॥

क्रौञ्चभेदन उवाच—

महापाशुपताक्रान्त नमः पन्नगभूषण[8] ।
षट्त्रिंशदक्षरी विद्या[9] बगलापाश्चमेव च[10] ॥२॥

ईश्वर उवाच—

मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि पुरश्चरणलक्षणम् ।
योगं चोपसंहारं शान्ति तच्छृणु पुत्रक[11] ॥३॥
तारं च बगलाबीजं बगलापदमुच्चरेत् ।
मुखीति पदमुच्चार्य सर्वशब्दं ततोच्चरेत् ॥४॥
दुष्टानां पदमुच्चार्य वाचं[12] मुखं पदं[13] वदेत् ।
स्तम्भयेति पदं चोक्त्वा जिह्वां कीलय उच्चरेत्[14] ॥५॥
बुद्धिशब्दं ततोच्चार्य विनाशय[15] ततो[16] वदेत् ।
स्थिरमायां[17] ततोच्चार्य प्रणवं च ततोच्चरेत् ॥६॥

---

१. घ. तिलतैलेन संयुक्तं । २. ग. शाल्मिली० । ३. घ. प्रेतमुखं । ४. क. ग्नौ मे । घ. भौमेः । ५. घ. प्रेतकाष्ठे च । ६. ख. मृकण्ड० । घ. मृकुण्डसदृशे । ७. घ. ०एकाक्षरीषट्प्रयोगकथनं नाम षष्ठः पटलः ॥ ८. ख. ०भूषणम् । ९. ख, ग. षट्त्रिंशक्षदरींविद्यां । १०. ख. वगलां तां च मे वद । ग. वगलायाश्च मे वद । घ. वगलायाश्च देवता । ११. घ. साम्प्रतं श्रृणु पुत्रक । १२. ख. वाचे । १३. ग. पदे । १४. घ. कीलयमुच्चरेत् । १५. ग. विनाशयेति । घ. विनाशाय । १६. घ. पदं । १७. घ. स्तब्धमायां ।

वह्निजायां समुच्चार्य्य एवं मन्त्रं समुद्धरेत् ।
षट्त्रिंशदक्षरं मन्त्रं मन्त्रराजमिदं भुवि ॥७॥

न्यासविद्यां प्रवक्ष्यामि सदा सिद्धिकरीं पराम् ।
बगलामातृकां चादौ कामतार्तीयवाग्भवम् ॥८॥

श्रीमायामातृकां चैव बगलापञ्जरं न्यसेत् ।
लघुषोढां च विन्यस्य सर्वमन्त्रेष्वयं क्रमः ॥९॥

ध्यानं यत्नात्प्रवक्ष्यामि ध्यानं सर्वार्थसिद्धिदम्[1] ।
आदौ मध्ये तथा चान्ते ध्यानं सर्वार्थसिद्धिदम् ॥१०॥

चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम् ।
त्रिशूलं पानपात्रं च गदां जिह्वां च बिभ्रतीम् ॥११॥

बिम्बोष्ठीं कम्बुकण्ठीं च समपीनपयोधराम् ।
पीताम्बरां मदाघूर्णां ध्यायेद् ब्रह्मास्त्रदेवताम् ॥१२॥

नारदो ऋषिरेवात्र बृहतीच्छन्द एव च ।
देवता बगला नाम स्तम्भनास्तंभचिन्मयीम्[2] ॥१३॥

लँ बीजं चैव हुँ शक्तिः इँ[3] कीलकमुदाहृतम् ।
शत्रूणां स्तम्भनार्थञ्च जपेऽहं[4] विधिपूर्वकम् ॥१४॥

सङ्कल्पपूर्वकं मन्त्रं कीलचक्रक्रमेण च ।
पृथ्वीलक्षं जपेन्मन्त्रं न्यासध्यानसमन्वितम् ॥१५॥

तर्प्पयेत्तद्दशांशंच हेतुमिश्रेण[5] वारिणा ।
जुहुयाद्बिल्वकुसुमं[6] तद्दशांशं च बुद्धिमान् ॥१६॥
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्तद्दशांशं घृतप्लुतम् ।
तर्पयेत्[7]तर्पयामीति स्वाहान्तं होममाचरेत् ॥१७॥

पूजा त्रैकालिकी नित्यं जपस्तर्पणमेव[8] च ।
होमो[9] ब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते ॥१८॥
पुरश्चर्यां[10] विना मंत्रं न प्रसिद्ध्यति[11] भूतले ।
एवं स्वाधीनमन्त्रेण[12] षट्प्रयोगान् समाचरेत् ॥१९॥

---

१. ख. सर्वकामार्थसिद्धिदम् । २. ख. स्तंभनास्त्रे च चिन्मयीं । ग. घ. स्तंभनास्त्रं च चिन्मयीं । ३. ग. रँ । ४. घ. जपेयं । ५. घ. हेतुसंमिश्र । ६. ग. विल्वकसुमैः । ७, घ. तर्पणे । ८. ग. घ. जपतर्प० । ९. घ. होम । १०. घ. पुरश्चर्या । ११. घ. सा सिद्धयति । १२. घ. साधितमन्त्रेण ।

शान्त्याद्यं (न्त्यर्थं) जुहुयाच्छालिसक्तुराज्यसमन्वितम्[१] ।
गुणायुतं हुते[२] धीमान् कुण्डे पूर्वोक्तमादरात् ॥२०॥

वशीकरणकार्येषु विल्वपत्रं घृतप्लुतम्[३] ।
गुणायुतं चामलकप्रमाणं क्रौञ्चभेदन[४] ॥२१॥

स्तम्भनेषु[५] हुनेद्धीमान् तालकं घृतसम्प्लुतम् ।
बदरीफलमात्रं तु गुणायुतमनन्यधीः ॥२२॥

विद्वेषणे च जुहुयात्पत्रैर्निम्बार्कसंयुतैः[६] ।
रात्रौ वेदायुतं धीमान् सद्यो विद्वेषणं परम्[७] ॥२३॥

राजीलवणसंयुक्तं बाणायुतमनन्यधीः ।
तस्य[८] चोच्चाटनं[९] शीघ्रं ध्रुवकूर्मादयोरपि[१०] ॥२४॥

तिलतैलेन संयुक्तं माषहोमं गुणायुतम् ।
प्रेताग्नौ प्रेतकाष्ठं[११] च जुहुयात्प्रेतकानने ॥२५॥

भौमवारे निशा[१२] नग्नो जुहुयात्प्रेत उल्मुके[१३] ।
सद्यो मारणमाप्नोति मृकण्डुसदृशोऽपि च[१४] ॥२६॥

॥ इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे सप्तमं पटलम्[१५] ॥

॥ अथाष्टमः पटलः ॥

बिम्बोष्ठीं चारुवदनां समपीनपयोधराम् ।
पानपात्रं वैरिजिह्वां धारयन्तीं शिवां भजे ॥१॥

क्रौञ्चभेदन उवाच—

नमः कौलागमाचार्यं वेदवेदाङ्गपारग ।
बगलामन्त्रराजस्य प्रयोगं वद शङ्कर ॥२॥

ईश्वर उवाच—

राजीलवणमादाय मूलमन्त्रेण पुत्रक ।
ग्रस्तं कृत्वा साध्यनाम जुहुयादयुतं निशि ॥३॥

१. ख. ०शक्तुमाज्य० । २. ख. ग. घ. हुनेद् । ३. ख. घृतप्लुते । ४. घ. पुस्तके पद्यमिदं नास्ति । ५. ख. स्तंभने सु । घ. स्तंभने तु । ६. ख. घ. ०निम्बार्क संभवैः । ७. ख. ग. घ. -भवेत् । ८. घ. सद्य । ९. ग. उच्चाटनं । घ. मुच्चाटनं । १०. ख. ध्रुवं कूर्मा० । घ. ध्रुवकर्मा० । ११. ख. प्रेतकाष्ठे । १२. ख. निशी । ग. घ. निशां । १३. ख. गोल्मुके । घ. दिङ्मुखे । १४. घ. वा । १५. घ. मंत्रराजकथनं नाम सप्तमः पटलः ।

नानारोगहरं चैव नानाभूतनिकृन्तनम् ।
नानाकृत्त्रिमनाशञ्च भवेत्सत्यं न संशयः ॥४॥
हरिद्राखण्डहोमेन अयुतेन कुमारक ।
वशीकरणसम्मोहं भवेच्छङ्करभाषणम् ॥५॥
तालकेन हुनेद्रात्रौ नेत्रायुतमनन्यधीः ।
नानास्तम्भनमार्गेषु सत्यमेतन्न संशयः ॥६॥
खरस्य[1] रक्तमादाय जातिकर्म्मविरोधिनाम् ।
निम्बार्कपत्रमादाय प्रत्येकं नाम चालिखेत् ॥७॥
प्रेताग्नौ प्रेतकाष्ठे च नग्ने च[2] प्रेतदिङ्मुखे[3] ।
हुनेत्प्रेतवने धीमानयुतं द्वेषकारकम् ॥८॥
अनाथस्य चितौ रात्रौ शत्रुप्रकृतिं लिखेत् ।
हृदये नाम आलिख्य[4] मारयेति ललाटके ॥९॥
दहयुग्मं लिखेद् बाहौ ऊर्वोस्तस्य[5] कुरुद्वयम् ।
एवं च विलिखेत्सम्यक् सशत्रोर्वर्णमादरात्[6] ॥१०॥
ताडयेद् हृदये[7] मन्त्री शतमष्टोत्तरं जपेत् ।
तद्भस्म संग्रहे[8] धीमान् गोपयेन्नगराद्बहिः[9] ॥११॥
पुनर्भौमनिशाकाले मन्त्रयेन्मूलमन्त्रतः ।
अष्टोत्तरसहस्रं च शत्रुमूर्द्धनि[10] विनिःक्षिपेत्[11] ॥१२॥
स शत्रुः सप्तरात्रेण म्रियते नात्र संशयः ।
उष्ट्रारूढं रिपुं ध्यात्वाग्रस्य दण्डेन[12] मन्त्रयेत्[13] ॥१३॥
निःक्षिपेत्सप्तरात्रं तु सप्तधा मन्त्रितं[14] तथा ।
उच्चाटनं भवेत्सत्यं शिवस्य वचनं यथा[15] ॥१४॥
प्रेतभस्म रवौ[16] ग्राह्यं बगलामंत्रराजतः ।
सहस्रं मन्त्रयेच्छत्रो[17] रात्रौ[18] नग्नो न[19] भौमके ॥१५॥

१. ग. घ. वाराह । २. ख. नग्नश्च । घ. नग्नो वा । ३. ख. घ. प्रेतदिङ्मुख । ४. ग. घ. मालिख्य । ५. ख. ऊर्वोर्भस्मै । घ. ऊर्वोर्भस्म । ६. ख. स्वशत्रो० । घ. शत्रोर्वर्णसमादरात् । ७. ग. घ. गदया । ८. ख. ग. घ. संग्रहेद् । ९. घ. रोपयेन्न० । १०. घ. शत्रोन्मूर्धनि । ११. घ. निक्षिपेत् । १२. ख. ग्रस्थदण्डेन । घ. ग्रस्तं कृत्वा तु । १३. घ. मंत्रवित् । १४. ख. मंत्रिते । १५. घ. तथा । १६. क. वशो । १७. ख. भस्म । घ. रात्रौ । १८. घ. मंत्री । १९. ख. नग्नोऽथ । ग. घ. नग्नेन ।

खाने पाने च तद्भस्म दातव्यं शत्रुमण्डले ।
वाक्पाणिपादपायुश्च[1] नेत्रश्रोत्रमतिस्तथा ॥१६॥
स्तंभनं च भवेच्छीघ्रं बृहस्पतिसमोऽपि च[2] ।
किम्पुनर्मानवादीनां स्तंभनं[3] क्रौञ्चभेदन ॥१७॥
क्षुद्रप्रयोजनैः[4] पुत्र न कर्त्तव्यं कदाचन ।
अज्ञानात्कुरुते यस्तु देवताशापमाप्नुयात् ॥१८॥
ग्रस्तं कृत्वा वैरिनाम विलिखेत्तालपत्रके ।
निशाकाले चार्कवारे निर्दहेद्दीपवह्निना ॥१९॥
कुबेरसदृशः श्रीमान् माससमात्रेण पुत्रक ।
मन्दबुद्धिर्दरिद्रोऽपि जायते भुवि पुत्रक ॥२०॥
चितिवस्त्रं रवौ ग्राह्यं तदङ्गारं रवौ पुनः ।
चितिकाष्ठं रवौ ग्राह्यं रवौ कुर्यात्स लेखिनीम् ॥२१॥
रवौ रात्रौ च संलिख्य शत्रुनाम[5] च तत्पटे ।
वेष्टयेद् बगलाबीजं मूलमंत्रं ततो लिखेत् ॥२२॥
वह्निबीजेन संवेष्टय वेष्टयेज्जीवनीमनुः[6] ।
तद्वस्त्रगुलिकां[7] कृत्वा वेष्टयेत् श्वेतरज्जुना[8] ॥२३॥
स्थापयेच्च कपाले तु निशि भौमे च[9] चर्चिते[10] ।
प्रादेशगर्त्तं कृत्वाथ श्मशाने[11] च सुबुद्धिमान् ॥२४॥
रवौ रात्रौ च[12] निःक्षिप्य पूरयेद्भस्म सादरात्[13] ।
तत्र नग्नो[14] जपं कुर्यादयुतं मूलविद्यया ॥२५॥
मन्दाग्निर्मन्दबुद्धिश्च[15] नेत्रश्रोत्रेषु[16] मन्दताम्[17] ।
पाणिपादौ[18] च मन्दत्वं निर्वीर्यो भवति ध्रुवम् ॥२६॥
एवं रोगसमायुक्तो मण्डलाद्रिपुनाशनम् ।
चन्द्रप्रस्तारमंत्रेण द्रव्यतर्प्पणमाचरेत् ॥२७॥

---

१. घ. पायूश्च । २. घ. वा । ३. ग. सुगमं । ४. ०ख. घ.०प्रयोजने । ५. घ, रिपोर्नाम । ६. ख. ०जीवनो० । ७. घ. तद्वस्त्रं गुटिकां । ८. ख. प्रेतरज्जुना । ९. ख. घ. भौमेन । १०. घ. चार्चयेत् । ११. ग. स्मशाने तु । १२. ख. पि । १३. घ. मादरात् । १४. घ. नग्ने । १५. ग. मंत्राग्नि० । १६. घ. नेत्रश्रोत्रे च । १७. घ. मन्दता । १८. ख. पाणौ पादे ।

शतं सहस्रमयुतं कार्यलाघवगौरवात् ।
तत्तर्पणासवं[1] पीत्वा[2] प्रयोगं शान्तिमाप्नुयात् ॥२८॥
न कर्तव्यं मुमुक्षैश्च[3] परपीडां कदाचन ।
प्राणैः कण्ठगतैः कुर्यात् पश्चात् संस्कारमाचरेत् ॥२९॥

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे अष्टमं पटलम्[4] ॥८॥

॥ अथ नवमः पटलः ॥

पीताम्बरालङ्कृतपीतवर्णां शातोदरीं[5] शर्वमुखामृतार्चिताम्[6] ।
पीनस्तनालङ्कृतपीतपुष्पां सदा स्मरेयं बगलामुखीं हृदि ॥१॥

क्रौंचभेदन उवाच—

नमोऽस्तु मंत्रागमकोविदाय श्रीनीलकण्ठाय नमो नमस्ते ।
एतन्मनोर्यन्त्रमखण्डतेजसे[7] प्रयोगमूलं वद चन्द्रचूड ॥२॥

ईश्वर उवाच—

यन्त्रप्रयोगं यमशासने[8] कलौ यन्त्रप्रयोगं यमिनां च दुर्लभम् ।
यन्त्रप्रयोगं यतयस्तु कुर्वतां[9] यज्ञाद्धि[10]गोविप्रयतेश्च[11]रक्षणे ॥३॥
बिन्दुं[12] त्रिकोणं वृत्तं च अष्टकोणं ततोपरि ।
ततोपरि लिखेत्पुत्र षट्कोणं वृत्तमादरात् ॥४॥
ततोपरि लिखेत्सम्यक् भूपुरद्वयमादरात्[13] ।
बिन्दुमध्ये लिखे[14]त्कोणत्रितये[15] त्रितयं[16] त्रिधा ॥५॥
अष्टकोणेषु[17] विलिखेद् गायत्रीं बगलाह्वयाम् ।
षट्कोणेषु[18] सुसंलिख्य[19] विद्यां षट्त्रिंशदक्षरीम् ॥६॥
वृत्तेषु[20] विलिखेत्पुत्र पञ्चाशद्वर्णमादरात् ।
भूपुरेषु च संलिख्य प्राणस्थापनकं मनुम्[21] ॥७॥

---

१. ख. तत्तर्पणाम्भः । २. ख. संपीत्वा । ३. ख. मुमुक्षेश्च ४. ०अष्टमः पटलः । ५. ख. शान्तोदरीं । ६. ख. थ. शर्वमुखामरा० । ७. क, ख. ग. येतन्मनोर्यंत्रमखण्डतेक्ष । ८ घ. यमशासनं । ९. घ. कुर्वन् । १०. ख. घ. यज्ञादि । ११. घ. ०यतश्च । १२. ख. घ. यिन्दु । ग. बिन्दुः । १३. ख. ग. घ. पुस्तकेष्वयमंशो विशेषः—
"बिन्दुमध्ये लिखेद्बीजं बगलायाश्च पुत्रक ।
साध्यं तद्बीजगर्भं (मध्य. घ.) स्थं कुर्यात् सम्यक् सुबुद्धिमान् ॥
१४. क. ख. ग. तद्बीजं विलिखेत् । १५. घ. त्रितयेषु । १६. घ. त्रिधा । १७. घ. अष्टपत्रेषु । १८. षट्कोणके । १९. ख. घ. च संलिख्य । २०. घ. वृत्ते तु । २१. घ. मनुः ।

रजते स्वर्णपट्टे वा प्रादेशं चतुरस्रके ।
लेखिन्या स्वर्णमय्या[1] च लिखेद्भार्गववासरे ॥८॥

पूजायंत्रमिदं पुत्र पूजनात् सर्वसिद्धिदम् ।
पूजाविधिं प्रवक्ष्यामि मुनिगुह्यं सुपावनम् ॥९॥

मूलमन्त्रेण सम्पूज्य उपचारैश्च षोडशैः ।
शुद्धप्रदेशजां दूर्वां निर्मलां च सुकोमलाम् ॥१०॥

संग्रहेत्क्षालयेत् सम्यक् मंत्रराजेन पुत्रक ।
मन्त्रान्ते च नमः[2] पूर्वं[3] निःक्षिपेद् दूर्वमादरात्[4] ॥११॥

एवं भूतसहस्रं च पूजयेच्च दिने दिने ।
मण्डलाद्व्याधयः[5] सर्वे[6] मुच्यन्ते कृत्रिमादयः ॥१२॥

भूतप्रेतपिशाचाद्याः क्रूराः खेचरभूचराः ।
पूजनान्नाशमाप्नोति शिवस्य वचनं यथा ॥१३॥

अर्चयेत्पूर्ववद्यन्त्रमुपचारैश्च षोडशैः ।
संग्रहेद्रक्तकुसुमं[7] हयारिं च सुनिर्मलम् ॥१४॥

तेन पूजा प्रकर्त्तव्या[8] पूर्ववन्मण्डलं सुधीः ।
सम्मोहनं च वश्यञ्च द्रव्यलाभं भवेद्ध्रुवम् ॥१५॥

बिभीतकोद्भवं पुष्पमाहरेद्भौमवासरे ।
पूजयेत्पूर्ववत्पुत्र नानास्तम्भनकर्मणि ॥१६॥

निम्बार्ककुसुमेनाथ[9] यन्त्रं वापि[10] कुमारक ।
पूर्ववत्पूजयेन्मन्त्री[11] सद्यो विद्वेषणं भवेत् ॥१७॥

धत्तूरकुसुमेनैव पूर्ववत्पूजयेत्सुत ।
उच्चाटनं भवेत्सत्यं नान्यथा शिवभाषणम् ॥१८॥

विषतिन्दुकपुष्पेण पूर्ववत्सम्यगर्चयेत् ।
सद्यो विनाशमाप्नोति[12] मृकण्डुसदृशो[13] रिपुः ॥१९॥

---

१. ख. स्वर्णमय्याः । २. ग. पुनः । ३. ख. पूर्वां । ४. घ. क्षिपेद्दूर्वां समादरात् । ५. घ. ०दामयाः । ६. ख. सर्वा । ७. क. संग्रहे प्रकुसुमं । ८. घ. प्रकर्त्तव्यं । ९. घ. ०चाथ । १०. घ. पुत्रेणाथ । ११. घ. ०पूजयन् । १२. ख. विनाशमायाति । घ. नाशमवाप्नोति १३. घ. मृकुण्ड० ।

शमन्तकुसुमेनैव[1] पूर्ववत्पूजयेन्नरः ।
पूर्ववज्जायते[2] लोके वेदशास्त्रार्थकोविदः ॥२०॥

पलाशकुसुमेनैव पूर्ववत्पूजयेन्नरः ।
सद्यो मन्दो भवेद्वाग्मी लभेत्सर्वज्ञतां सुत ॥२१॥

पूर्ववत्पूजयेत् पुत्र अशोककुसुमेन च ।
ईप्सितां[3] लभते[4] कन्यां सा तु पुत्रवती भवेत् ॥२२॥

तुलसीमञ्जरीभिश्च पूर्ववत्पूजयेन्नरः ।
ज्ञानभक्तिश्च वैराग्यं लभते[5] तरलैरपि[6] ॥२३॥

नन्दावर्त्तेन[7] सम्पूज्य वातरोगं व्यपोहति ।
मल्लिकाकुसुमेनैव पूजयेज्ज्वरशान्तये ॥२४॥

कुसुमैश्चम्पकैरर्च्य[8] शीतज्वरनिवारणम् ।
अर्चयेज्जातिकुसुमैर्महारोगं[9] विनश्यति ॥२५॥

वन्यैश्च मल्लिकापुष्पैर्निःक्षेपं[10] लभते ध्रुवम् ।
केतकीकुसुमेनार्च्य द्रव्यवान् जायते ध्रुवम् ॥२६॥

एवं च पूजयेद्यन्त्रं न जपैर्न च होमतः ।
प्रयोगसिद्धिर्भवति बगलायाः प्रसादतः ॥२७॥

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे नवमं पटलम्[11] ॥९॥

॥ अथ दशमः पटलः ॥

कम्बुकण्ठीसुताम्रोष्ठीं[12] मदविह्वललोचनाम् ।
भजेऽहं बगलां देवीं पीताम्बरधरां शुभाम् ॥१॥

क्रौञ्चभेदन उवाच—

अष्टमूर्त्ते महामूर्त्ते नमस्ते चन्द्रशेखर ।
वद प्रयोगं मंत्रस्य[13] लेपनक्रममादरात्[14] ॥२॥

ईश्वर उवाच—

पूर्वोक्तं यन्त्रमालिख्य[15] प्राणस्थापनपूर्वकम् ।
अर्चयेदुपचारेण[16] चन्दनेन विलेपयेत् ॥३॥

१. घ. स्यमन्त । २. ग. पुत्रवान्० । घ. पुत्रं वा० । ३. घ. ईप्सितां च । ४. घ. लभेत् । ५. ग. लभ्यते । ६. घ. च परैरपि । ७. ख. नन्दावर्त्तैव । नन्द्यावर्त्तैश्च । घ. नंद्यावर्त्तेन । ८. घ. ०रर्चेत् । ९. ग. महारोगं । १०. घ. निक्षिप्त । ११. घ. ०यंत्रप्रयोगं नाम नवमः पटलः । १२. ख.ग. कम्बुकण्ठीं० । १३. घ. यन्त्रस्य । १४. घ. लेपनं० । १५. घ. ०मालिख्यं । १६. घ. ०दुपचारैश्च ।

बाणायुतं जपेद्धीमान् नित्यपूजासमन्वितम् ।
राज्यसिद्धिर्भवेत्सत्यमयत्नेन[1] कुमारक ॥४॥

कस्तूरीलेपनं कुर्यात्सम्यगर्च्चितयन्त्रके ।
नित्यं बाणसहस्रं च[2] न्यासध्यानसमन्वितम् ॥५॥

मण्डलद्वययोगेन रोगकृत्याग्रहादयः ।
तत्क्षणान्नाशमायान्ति[3] तमः सूर्योदये[4] यथा[5] ॥६॥

धूर्तिं चार्द्धपलं[6] नित्यं लेपयेद्यन्त्रमादरात् ।
जपं कुर्यात्पूर्ववच्च मासं वा मण्डलं तु वा ॥७॥

वशीकरं तु सम्मोहं द्रव्यसंग्रहमेव च ।
भवत्येव न सन्देहो नात्र कार्या विचारणा ॥८॥

हरिद्रातालकं चैव अर्कक्षीरेण मर्द्दितम्[7] ।
त्रिकालं लेपयेन्नित्यं त्रिसहस्रं जपेद्दिने ॥९॥

महास्तंभनमाप्नोति[8] कर्णाक्षिवाक्पतिस्तुवा[9] ।
मण्डलान्नगरं[10] ग्रामं रणसम्मोहमेव च[11] ॥१०॥

सर्षपास्त्रिकदूर्वैश्च[12] दुग्धैर्वज्रार्कसम्भवैः ।
क्षारेण[13] मर्दयेत्सम्यक् यन्त्रलेपनमाचरेत् ॥११॥

कृत्वार्धमण्डलं चैव षट्सहस्रं दिने दिने ।
विद्वेषणं भवेत्सिद्धं शिवस्य वचनं यथा ॥१२॥

धत्तूरं तिन्दुकं[14] बीजं तालकेन समन्वितम् ।
निम्बपत्रद्रवेनैव मर्दयेल्लेपयेत्त्रिधा ॥१३॥

एवं मासप्रयोगेण नगरं ग्राममेव च ।
रणे[15] वा राजगेहे[16] वा शीघ्रमुच्चाटनं भवेत् ॥१४॥

प्रेतान्नं प्रेतभस्मं[17] च प्रेताङ्गारं समं समम् ।
अर्कवज्रीमयं[18] क्षीरं खल्वेनैव[19] तु मर्दयेत् ॥१५॥

---

१. क. ०मयनेन । २. घ. तु । ३. घ. ०माप्नोति । ४. ग. सूर्योदयः । ५. घ. तथा । ६. ख. भूचिन्तार्थं फलं । ७. घ. मर्द्दयेत् । ८. घ. पक्ष्यात् । ९. ख. कर्णाक्षिवाक्युतिस्तु । घ. कर्णाक्षी वाङ्मतिस्तु । १०. घ. नगरे । ११. घ. वा । १२. ख. सर्षपास्त्रिकट्वर्कैश्च । ग. सर्षपास्त्रिकटुवैर्वा । घ. सर्षपा त्रिकटुश्चैव । १३. ग. क्षीरेण । घ. खल्वेन । १४. घ. निर्तिदुबकं । १५. घ. रणं । १६. घ. राजगेहं । १७. ख. प्रेतभूतिं । १८. ग. अर्कवज्रमयी । घ. अर्कवज्रमयं । १९. क. खलेनैव ।

त्रिकालं लेपनं कुर्यात् प्रीतये होमयुक्तिना[1] ।
नित्यं[2] ऋतुसहस्रं[3] तु मन्त्रराजमिमं[4] जपेत् ॥१६॥
पक्षान्मारणमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।
अथवा निम्बतैलेन तद्वत्कृत्वा तु मारणम् ॥१७॥
तिलतैलेन संयुक्तं मर्दयेद् गरमादरात्[5] ।
यन्त्रस्य लेपनं कुर्यात् त्रिकालं मूलविद्यया ॥१८॥
सन्तपेद्दीपशिखया पक्षमेकं कुमारक ।
मारणं च भवेन्नित्यं नात्र कार्या विचारणा ॥१९॥
वज्रीक्षीरं[6] त्रिकालं तु पूर्ववल्लेखनेषु[7] च ।
तापज्वरस्य पीडायां षण्मासाद्रिपुमारणम् ॥२०॥
पूर्ववल्लेपनं चैव जपसन्तर्पणं[8] तथा ।
त्रिसप्तदिनमात्रेण मारणं चोरगौरगैः[9] ॥२१॥
धत्तूरद्रवसंयुक्तं मर्दयेत्सर्षपं तथा ।
जपलेपनयोः[10] पुत्र गुल्मरोगी भवेद्रिपुः ॥२२॥
निम्बपत्रद्रवं चैव विषकण्टकजं[11] तथा ।
विषतिन्दुकजं चैव त्रिविधं च समं समम् ॥२३॥
त्रिकाललेपनं[12] कुर्यात् षट्सहस्रं[13] मनुं जपेत् ।
पक्षेण[14] द्वादशाहेन[15] मारणं च समं समम्[16] ॥२४॥
त्रिकालं लेपनं कुर्यात् षट्सहस्रं मनुं जपेत् ।[17]
मर्दयेदारनालेन मारिचं त्रिफलां तथा ॥२५॥
त्रिकालं लेपनं कुर्यात्[18] त्रिकालं जपमाचरेत् ।
करपादादिदाहेन[19] मण्डलाच्छत्रुमारणम्[20] ॥२६॥

---

१. घ. सन्तपेद्दीपवह्निना । २. घ. निसं । ३. घ. क्रतु० । ४. घ. ०मिदं । ५. घ. ०रलवमा० । ६. घ. वज्रक्षीरं । ७. घ. ०लेपनेन च । ८. ग. जपः० । ९. घ. वैरिकैर्गृहः । ग. चोरगौरजैः । १०. ख. यंत्रलेपनयोः । घ. जपलेपनया । ११. ग. ०कण्टककं । १२. ख. घ. त्रिकालं० । १३. क. सहस्रं । १४. घ. पक्षाद्वा । १५. घ. द्वादशाहं वा । १६. ख. ग. घ. न संशयः । १७. पादद्वयं पुस्तकान्तरेषु नास्ति । १८. घ. कृत्वा । १९. क. करपाद्यपि० । ग. करपादावि । घ. करपाददहेनैव । २०. क. ०तारणम् ।

गोमयैर्लेपनं[1] दत्वा गुल्मरोगी भवेद्रिपुः ।
गोमूत्रं छागमूत्रं च मिश्रितं पूर्ववत्तथा ॥२७॥
पित्तरोगी[2] भवेच्छत्रुरर्द्धमण्डलमात्रतः ।
लेपनं छागरक्तेन भ्रान्तान्पैत्ति[3] भवेद् ध्रुवम् ॥२८॥
मत्कुणस्य च रक्तेन उन्मादी जायते रिपुः ॥

॥ इतिषड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे दशमं पटलम्[4] ॥१०॥

॥ अथैकादशः पटलः ॥

नमस्ते वगलादेवीमासवप्रियभामिनीम्[5] ।
भे(भ)जेऽहं स्तम्भनार्थं च गदां जिह्वां च बिभ्रतीम्[6] ॥१॥

क्रौञ्चभेदन उवाच—

नमस्ते मौलिसंसेव्य[7] नमः पन्नगभूषण[8] ।
तर्पणेन[9] प्रयोगं च वद मे करुणाकर ॥२॥

ईश्वर उवाच—

पूजयेद्यन्त्रराजं च उपचारैश्च षोडशैः ।
तद्यंत्रोपरि सन्तर्प्य तर्प्पणस्य विधिं शृणु ॥३॥
गुडोदकैस्तर्पणं च कुर्यात्पंचायुतं तथा ।
शान्तिकृत्यं भवेच्छीघ्रं नात्र कार्या विचारणा ॥४॥
द्रवेण[10] तर्पणं कुर्यात् पूर्वसंख्यासु पुत्रक ।
वश्यं सम्मोहनं चैव भवेत्तर्पणयोगतः ॥५॥
मोहिनीद्रवसंमिश्रं[11] जलेनैव तु तर्पणम् ।
नेत्रायुतप्रमाणेन जिह्वास्तम्भनमाप्नुयात् ॥६॥
गतिगर्भं[12] च वाक्यानि[13] गात्रं श्रोत्रं तथाक्षिकम् ।
क्षुधा तृष्णा च निद्रा[14] च स्तंभनं च भवेद् ध्रुवम् ॥७॥
निम्बार्कपत्रजद्रावैर्मिश्रितं कूपवारिणा ।
पञ्चायुतं तर्पणेन सद्यो विद्वेषणं भवेत् ॥८॥

१. ग. गोमये० । २. घ. पैत्यरोगी । ३. ख. भ्रान्तचित्तो । ग. भ्रान्तान्पैत्ति । घ. भ्रान्तिरोगी । ४. घ. ०त्रि(वि)लेपनं नाम दसमः पटलः । ५. ग. वगलां० । घ. वगलादेवी वासवप्रियमोदिनी । ६. घ. बिभ्रती । ७. घ. मौनि० । ८. घ. ०भूषणे । ९. घ. तर्पणस्य । १०. ख. ग. घ. द्रव्येण । ११. घ. मोहनीद्रवसंयुक्त । १२. ग. गतिस्तंभं । घ. गति गर्भं । १३. ग. घ. वाक्पाणि । १४. घ. तृष्णा क्षुधां च निद्रां ।

वज्रार्कक्षीरमिश्रं च 'कान्ता च'[1] तर्पणेन च ।
उच्चाटनं[2] भवेच्छत्रोरयुतत्रयमादरात् ॥९॥

प्रेतान्नं प्रेतभस्मं[3] च प्रेताङ्गारं च पुत्रक ।
समं समं गरं[4] ग्राह्यं जीवेनैव[5] तु मिश्रितम् ॥१०॥

नेत्रायुतं तर्पणेन साक्षाद् रिपुविनाशनम् ।
हयारिपत्रजद्रावैर्मिश्रितं[6] मारणं भवेत् ॥११॥

कर्पूरमिश्रितं तोयं[7] पंचाशच्छतमादरात् ।
नित्यं च तर्पयेद् धीमान् मासमेकमतन्द्रितः ॥१२॥

पुराणज्वरमत्युग्रं[8] पित्तरोगं विनश्यति ।
चन्दनाम्भस्तर्पणेन तापं कृत्रिमजं हरेत् ॥१३॥

कस्तूरीमिश्रितं तोयै राज्यलाभो भवेद् ध्रुवम् ।[9]
यैस्तु[10] तर्पणमंत्रेषु[11] अयुतं रविसंख्यया[12] ॥१४॥

कुबेरसदृशः श्रीमान् जायते नात्र संशयः ।
माध्वीद्रव्येण सम्मिश्रं[13] पूजितं[14] शुद्धवारिणा ॥१५॥

रत्नायुतं[15] तर्पणेन लक्ष्मीर्वा[16] जायते ध्रुवम् ।
गोक्षीरतर्पणेनैव ईप्सितां सिद्धिमाप्नुयात् ॥१६॥

तक्रेण तर्पणं चैव[17] पित्तरोगं व्यपोहति ।
आरनालेन संतर्प्य जलदोषं च[18] शाम्यति ॥१७॥

हरिद्राम्भस्तर्पणेन स्त्रीणामाकर्षणं भवेत् ।
शमंतकुसुमेनैव[19] मिश्रितं जलतर्पणम् ॥१८॥

पुत्रवान् जायते मर्त्यो[20] अयुतेन न संशयः ।
कदलीफलगोक्षीरं शर्करा च समं समम् ॥१९॥

---

१. '–' ख. करांभः । घ. कोशांभः । २. क. उच्चाटनो । ३. ख. प्रेतभूमि । ४. घ. च सं० । ५. ख. मानेनैव । ६. घ. मयूरपत्रजै द्रावैः० । ७. क. तोये । ८. ग. घ. ०मृत्युग्रं । ९. घ. पुस्तकेऽयं विशेषः पाठः—

"गोडीद्रव्यस्तर्पणेन द्रव्यलाभो भवेद् ध्रुवम् ।"

१०. ख. ग. पैष्टचा । घ. पैष्टी । ११. ख. तर्पणमंत्रेण । ग. तर्पणमात्रेषु । घ. तर्पणमात्रेण । १२. घ. ऋषिसंख्यया । १३. घ. संमिश्र । १४. घ. पूरितं । १५. ख. तन्त्रायुतं । घ. तत्वायुतं । १६. ख. ग. घ. सक्ष्मीवान् । १७. ख. घ. तर्पणेनैव । १८. ख. प्र । १९. घ. स्यमन्त० । २०. घ. मृत्यो ।

पलाष्टकं च प्रत्येकं मिश्रितं जलतर्पणम् ।
मंत्रसिद्धिर्विना[1] सिद्धिर्भक्तिवैराग्यमेव च ॥२०॥

भ्रमज्ञानं व्यपोहंति नान्यथा शिवभाषणम् ।
छागरक्तेन संमिश्रं चार्चितं तैलतर्पणात्[2] ॥२१।

मूकांश्च कुरुते प्राज्ञान्[3] रिपुसंघाननेकशः[4] ।
जलेन मिश्रितं पुत्र शोणितं विड्वराहजम्[5] ॥२२॥

वेदायुतं तर्पणेन उन्मादी जायते रिपुः ।
काकरक्तेन सम्मिश्रं तर्पणं शुद्धवारिणा[6] ॥२३॥

जातिभ्रष्टो भवेच्छत्रुः स भवेन्निन्दको[7] भुवि ।
उलूकरक्तसंमिश्रं वारिणा तर्पणं तथा ॥२४॥[8]

व्रणेन म्रियते शत्रुरयुतद्वयसमंततः[9] ।[10]
श्वानरक्तेन संमिश्रं वारिणा तर्पणं तथा ॥२५॥

श्वानवज्ज्वलते[11] शत्रुर्म्रियते नात्र संशयः ।
मार्जाररक्तसम्मिश्रं[12] तर्पणं वारिणा तथा ॥२६॥

क्षयरोगी भवेच्छत्रुः षण्मासैर्म्रियते रिपुः ।[13]
उष्टरीशोणितं[14] मिश्रं तोये[15] सन्तर्प्पयेत् सह[16] ॥२७॥

---

१. घ. ०ज्ञान । २. घ. तेन तर्पणम् । ३. घ. यत्नाद् । ४. घ. ०संघानमेकशः । ५. घ. विड्वराहकम् । ६. घ. मिष्टवारिणा । ७. घ. सन्ततिर्निन्दिता । ८. ग. घ. पुस्तकद्वये विशेषोऽयं पाठः—

'नेत्रायुतं[1] भवेच्छत्रुर्नेत्ररोगी[2] न संशयः ।
खररक्तेन संमिश्रं वारिणा तर्पणं तथा ॥

९. ख. ०द्वयमन्ततः । ग. ०द्वययोगतः ।
१०. घ. पुस्तके पादद्वयस्थानेऽयमंशो दृश्यते—

तृणवज्ज्वलते शत्रुरयुतं ज्वरयोगतः ।"

११. ख. जायते । ग. घ. जल्पते । १२. घ. ०संयुक्तं । १३. ख. पुस्तकेऽस्मात्परमंशो विशेषः—

"भुजंगशोणितेनैव तर्पयेदर्द्धरात्रके ।
निशि सहस्रमानेन सिद्धं रिपुविनाशनम्" ॥

१४. घ. उष्ट्रस्य शोणितं । १५. ख. तोयैः । घ. तोयं । १६. घ. संतर्प्य बुद्धिमान् ।

---

१. घ. नेत्रायुताद् । २. घ. नेत्रनाशो ।

मासेन शत्रुमरणं मृकंडुसहशोऽपि वा ।
जपसंख्या यत्र नोक्ता लक्षमेकं कुमारक ॥२८॥
दिनसंख्या यत्र नोक्ता पक्षमेव[1] न संशयः ॥

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे एकादश पटलम्[2] ॥११॥

॥ अथ द्वादशः पटलः ॥

कौलागमैकसंवेद्यां सदा कौलागमाम्बिकाम् ।
भजेऽहं सर्वसिद्धयर्थं बगलां चिन्मयीं हृदि[3] ॥१॥

क्रौंचभेदन उवाच—

नमस्ते सर्वसर्वेश गर्वितासुरभञ्जन ।
गायत्रीं बगलाख्यां च वद मे करुणाकर ॥२॥

ईश्वर उवाच—

मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि मन्त्रमाहात्म्यमेव च।
पुर[4]श्चर्याप्रयोगं च वक्ष्येऽहं तव पुत्रक ॥३॥
ब्रह्मास्त्रायपदं चोक्त्वा 'विद्महेति पदं ततः'[5] ।
स्तम्भनेति पदं चोक्त्वा बाणाय तदनन्तरम् ॥४॥
धीमहीति पदं चोक्त्वा तन्नः[6] शब्दं ततो(दो)च्यते[7] ।
बगलापदमुच्चार्य उद्धरेच्च प्रचोदयात् ॥५॥
गायत्री बगलानाम्नी सर्वसिद्धिप्रदा भुवि ।
ब्रह्मा ऋषिश्च छन्दोयं(स्य) गायत्री समुदाहृतम्[8] ॥६॥
देवता बगलानाम्नी चिन्मयी[9] शक्तिरूपिणी ।
बीजं 'चैव शक्तिह्लीं'[10] कीलकं विद्महे पदम् ॥७॥
चतुर्लक्षं पुरश्चर्य्या तद्दशांशं च तर्प्पणम् ।
तद्दशांशं हुनेदाज्यं तावद्ब्राह्मणभोजनम् ॥८॥
न्यासध्यानादिकं सर्वं कुर्यात् 'तन्मन्त्रतो जपेत्'[11] ।
प्रयोगानथ वक्ष्यामि गायत्रीबगलाह्वये[12] ॥९॥

---

१. घ. पक्षसंख्या । २. घ. ०एकादशः पटलः । ३. ग. बगलाख्यं करुणाकरम् । ४. क. पुन । ५. '–' ख. विग्रहेति पदं तथा । घ. विद्महेति ततः पदम् । ६. ग. ततः । घ. तन्नो । ७. ग. घ. ततोच्चरेत् । ८. ख. यमुदाहृतम् । ख. वगला । १०. '–' घ. शक्तिह्लीं चैव । ११. '–' घ. तन्मन्त्रराजवत् । १२. ख. ०वगलाह्वया । घ. गायत्र्या वगलाह्वया ।

तारादि प्रजपेन्मन्त्रं मोक्षार्थी[1] च कुमारक ।
शान्त्यर्थं च[2] जपेत्पुत्र शारदाबीजपूर्वकम्[3] ॥१०॥
सम्मोहनार्थं प्रजपेत् कामराजपुरस्सरम् ।
स्तम्भनार्थं प्रजपेच्छक्तिदाहकपूर्वकम्[4] ॥११॥
वाराहं शक्तिवाराहं स्तब्धमायापुरस्सरम् ।
प्रजपेन्मन्त्रमेतद्धि मारणं भवति ध्रुवम् ॥१२॥
वाग्भवादि जपेन्मंत्रं विद्यासिद्धिर्भविष्यति ।
बालादि प्रजपेन्मन्त्रं 'कन्यकां क्षिप्रमाप्नुयात्'[5] ॥१३॥
वाराहीबीजमध्यस्थां[6] गायत्रीं लक्षजापनात् ।
भूलाभं(भो) जायते तस्य अनायासेन[7] पुत्रक ॥१४॥
श्रीबीजादि जपेत् पुत्र गायत्रीं[8] बगलाह्वयाम्[9] ।
कुबेरसदृशः श्रीमान् जायते नात्र संशयः ॥१५॥
तार्क्ष्यबीजादि मंत्रं प्रजपेद् ध्यानपूर्वकम् ।
नानाविषप्रयोगांश्च ग्रहरोगादिनाशनम्[10] ॥१६॥
भैरवीं[11] बीजमाद्यं च प्रजपेच्च कुमारक ।
भूतप्रेतपिशाचाद्यास्तत्प्रयोगाद् व्यपोहति ॥१७॥
जपेदमृतबीजानि[12] गायत्रीं बगलाह्वयाम् ।
तापज्वरमहातापं[13] शमयेत्[14] क्रौञ्चभेदन ॥१८॥
जपेच्च वायुबीजादि गायत्रीं बगलाह्वयाम् ।
क्षिप्रमुच्चाटनं चैव भवेच्छङ्करभाषणम् ॥१९॥
अग्निबीजादिगायत्रीं प्रजपेद् बगलाह्वयाम् ।
महता(दा)तापसंयुक्तः[15] पक्षाच्छत्रुर्मृतो भवेत् ॥२०॥

---

१. घ. मोक्षार्थं । २. घ. प्र । ३. घ. तारावाराहपूर्वकम् । ४. ख. ग. घ. पुस्तकेष्वयं पाठः—

स्तम्भनार्थं जपेत्पुत्र बगलाबीजपूर्वकम् ॥
विद्वेषणार्थं प्रजपेद्धुंकारद्वयपूर्वकम् ।
उच्चाटनार्थं (घ. उच्चाटने) जपेत्पुत्र शक्तिवाराहपूर्वकम् ।

५. घ. कन्याकांक्षी मवाप्नुयात् । ६. घ. वाराहीमध्यबीजस्थां । ७. ग. अत्यायासेन । ८. क. ग. घ. गायत्री । ९. ख. बगलाह्वया । १०. घ. गलरोगादि० । ११. ख. घ. भैरवं । १२. ख. घ. बीजादि । १३. ख. तापज्वरं महातापं । घ. ०महावातं । १४. घ. नाशयेत् । १५. घ. संयुक्तं ।

मायादि प्रजपेत् पुत्र गायत्रीं बगलाह्वयाम् ।[1]
इष्टसिद्धिर्भवेत् क्षिप्रं शिवस्य वचनं यथा[2] ॥२१॥

मन्त्रराजस्य गायत्रीं पादाद्यवयवं[3] तथा ।[4]
गायत्रीं च विना मन्त्रं न सिद्ध्यति कलौ युगे ॥२२॥

पुरश्चरणकाले तु गायत्रीं प्रजपेन्नरः ।
मूलविद्यां[5] दशांशं च मन्त्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥२३॥

त्यक्त्वा तन्मन्त्रगायत्रीं यो जपेन्मन्त्रमादरात् ।
कोटिकोटिजपेनैव 'तस्य सिद्धिर्न जायते'[6] ॥२४॥

जपसंख्या यत्र नोक्ता लक्षमेकं कुमारक ।
दिनसंख्या यत्र नोक्ता पक्षमेकं न संशयः ॥२५॥

गायत्री बगलानाम्नी बगलायाश्च जीवनम् ।
मंत्रादौ चाथ मन्त्रान्ते जपेद्[7] ध्यानपुरस्सरम् ॥२६॥

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे द्वादश पटलम्[8] ॥१२॥

॥ अथ त्रयोदशः पटलः ॥

निधाय पादं हृदि वामपाणिना,
जिह्वां समुत्पाटनकोपसंयुताम् ।
दाभिघातेन च फालदेशे[9],
अम्बां भजेऽहं बगलां हृदब्जे ॥

क्रौञ्चभेदन उवाच—

श्रीकण्ठ श्रीगराधार[10] शार्दूलाम्बरभूषण[11] ।
शान्तवद्[12] वद मे पूजां बगलायाश्च शङ्कर ॥२॥

---

१. अतः परं ख. ग. घ. पुस्तकेषु विशेषः पाठः—
"राजा वा राजपुत्रो वा मरणान्तं वशीभवेत् ।
महामाया(ग. मायामाया)दिगायत्रीं प्रजपेद् बगलाह्वयाम् ।"
२. घ. तथा । ३. घ. पादाद्यावयवं । ४. घ. पुस्तकेऽयं विशेषः—
मंत्रसिद्धिर्भवेत् क्षिप्रं शिवस्य वचनं यथा
५. ख. घ. मूलविद्या । ६. '—' घ. न च सिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् । ७. ख. ग. जपे । घ. जप ।
८. घ. ०द्वादशः पटलः । ९. ख. वालदेशे । घ. फालदेशं । १०. घ. श्रीधराधार ।
११. घ. ०भूषणम् । १२. घ. सान्तवद् ।

ईश्वर उवाच—

बिन्दुमध्ये च सम्पूज्य स्वर्णसिंहासनोपरि ।
चिन्मयीं बगलादेवीं सर्वसिद्धिप्रदायिकाम् ।।३।।
चतुर्भुजां च द्विभुजां गदां जिह्वां च बिभ्रतीम् ।
पीतवर्णां महापूर्णामर्चयेन्मूलविद्यया[१] ।।४।।
त्रिकोणे पूजयेत् पुत्र 'वाणीं गौरीं रमां'[२] क्रमात् ।
तत्तद्बीजेन सम्पूज्य तदावाहनपूर्वकम्[३] ।।५।।
पञ्चास्त्रं[४] पञ्चकोणेषु वक्ष्ये तत्पूजनं क्रमात् ।
पूर्वकोणे तु सम्पूज्य अस्त्रं च बगलामुखीम् ।।६।।
द्वितीयकोणे संपूज्य अस्त्रराजं कुमारक ।
उल्कामुखीति विख्यातं तन्मंत्रेणैव पूजयेत् ।।७।।
तृतीयकोणे सम्पूज्य अस्त्रराजं कुमारक ।
'नाम्नी ज्वालामुखीं चैव तन्मन्त्रेणैव पूजयेत्'[५] ।।८।।
'चतुर्थकोणे सम्पूज्य अस्त्रराजं कुमारक'[६] ।
जातवेदमुखीनाम्नीं तन्मन्त्रेणैव पूजयेत् ।।९।।
पञ्चमेषु च कोणेषु अस्त्रराजं कुमारक ।
बृहद्भानुमुखी ख्याता त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ।।१०।।[७]
पञ्चकोणेष्वेवमेतत्पञ्चास्त्रं[८] सम्यगर्चयेत् ।
मूलमन्त्रेण तेनैव पूजायन्त्रं कुमारक ।।११।।
तदुपरि समभ्यर्च्य दिक्पालाष्टकमादरात् ।
तद्वाहनं च तच्छक्तिदशायुतपुरस्सरम्[९] ।।१२।।
तदुपरि समभ्यर्च्य मातृकाष्टकमेव च ।[१०]
तदुपरि समभ्यर्च्य विघ्नेशाष्टकमेव च ।।१३।।

---

१. ख. घ. मदाघूर्णां० । ग. महाघूर्णा । २. घ. वाणीगौरीरमाः । ३. घ. तत्ताद्वाहनपूर्वकम् । ४. घ. पञ्चास्त्रान् । ५. '—' चिह्नगोंऽशो घ. पुस्तके नास्ति । ६. '—' चिह्नान्तर्गतोंऽशो नावलोक्यते घ. पुस्तके । ७. घ. पद्यमिदं नास्ति । ८. घ. पञ्चमेषु च कोणेष्वेवमेव पञ्चास्त्रं । ९. ख. तच्छक्तिदशायुच० । घ. तच्छक्तिस्तदायुध० । १०. घ. पुस्तके विशेषः—

"तदुपरि समभ्यर्च्य भैरवाष्टकमेव च ।"

'पूजायंत्रं क्रमेणैव'[1] एवमेव कुमारक ।
शालग्रामशिलायां वा वह्निमण्डलमध्यमे ॥१४॥

कन्यकां[2] चाथवा पुत्र पूजयेद् बगलाम्बिकाम्[3] ।
उत्तमं[4] युवतीपूजा मध्यमं[5] वह्निमण्डले[6] ॥१५॥

अधमं[7] च शिलापूजा क्रम एष[8] शिवोदितः[9] ।
नमोऽन्तेनैव नाम्ना च पूजयेच्च कुमारक ॥१६॥

एवं च पूजयेत् सम्यक् पुरश्चरणके विधौ ।
द्रव्यं यत्त्रिविधं[10] प्रोक्तं पूजायां च विशेषतः ॥१७॥

गौडी माध्वी च पैष्टी च गौडी चैवोत्तमोत्तमा[11] ।
छागकुक्कुटमत्स्यं[12] च बगलाप्रीतिकारकम् ॥१८॥

त्रिकालं पूजयेद्देवीं त्रिकालं च[13] जपेन्मनुम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण पण्डितैर्वाग्विदां वरैः ॥१९॥

तस्य[14] प्रज्ञा पलानीय[15] तमः सूर्योदये[16] यथा[17] ।
तेजोभेदमनेकं च सर्वशत्रौ[18] कुमारक ॥२०॥

वह्नौ यद्वत् प्रविशंति[19] तद्वद्वादय[20] चातुरी[21] ।
बगला मंत्रसिद्धस्य[22] 'हृदये च प्रविश्यति'[23] ॥२१॥

प्रतिवादि[24] भवेत्स्तम्भो[25] बृहस्पतिसमोऽपि च ।
प्रज्ञाकर्षणशक्तिश्च बगला भूतले स्मरेत्[26] ॥२२॥

विद्यामाकर्षणार्थं[27] च स एव च[28] न संशयः[29] ।
ब्रह्मचारी गृही वापि वानप्रस्थोऽथवा यतिः ॥२३॥

---

१. '–' पूजायन्त्रक्रमे चैव । २. ख. कन्यायां । ३. घ. बगलामुखीम् । ४. घ. उत्तमा । ५. घ. मध्यमा । ६. घ. वह्निमण्डलम् । ७. घ. अधमा । ८. ख. एष । ग. एव । घ. त्रय । ९. क. ग. शिवोदिता । १०. च त्रिविधं । ११. क. ग. ०त्तमा । १२. मांसं । १३. घ. प्र । १४. घ. तस्य । १५. घ. पलायंते । १६. घ. सूर्योदयः । १७. घ. तथा । १८. घ. शत्रो । १९. घ. प्रशस्यंति । २०. ख. तद्वद्वाक्पद । २१. घ. चातुरम् । २२. घ. ०मंत्रसिद्धिः स्याद् । २३. '–' घ. दूरादेव प्रदर्शनात् । २४. घ. प्रतिवादी । २५. ख. घ. भवेत् स्तब्धो । २६. ख. स्मृता । २७. घ. वज्ञानाकर्षणार्थं । २८. घ. तु । २९. ख. घ. पुस्तकद्वयेऽधिकोऽयमंशो दृश्यते—

'उल्लंघ्य बगलामंत्रमुपवास(घ. मुपासक)मनन्यधीः" ।
यत्किंचित् कुरुते (घ. क्रियते) कर्म पृथ्वी(घ. शिला)बीजमिवांकुरैः (घ. ०वांकुरः)"

बगलामन्त्रसिद्धस्तु[१] सैव पूज्यो यतीश्वरः[२] ।
बगलामंत्रसिद्धश्च[३] यत्र तिष्ठति भूतले ॥२४॥

पञ्चक्रोशप्रमाणेन विद्वानेव च भासते ।
न भासते चान्यविद्या न स्मरन्न परामुखी[४] ॥२५॥

प्रयोगं चैव न भवेद् बगलार्चापरैः[५] पुरा[६] ।
ग्रसने[७] सर्वविद्यानां बगला यैव[८] भूतले ॥२६॥

बगलाया विना मन्त्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
तत्सम्प्रदायविधिना[९] साधयेद् बगलामुखीम् ॥२७॥

एवं च बगलामन्त्रं मन्त्रराजमिदं भुवि ॥

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे त्रयोदशं पटलम्[१०] ॥१३॥

॥ अथः चतुर्दशः पटलः ॥

सुधाब्धौ रत्नपर्य्यङ्के मूले कल्पतरोस्तथा ।
ब्रह्मादिभिः परिवृतां बगलां भावयेद्[११] हृदि ॥१॥

क्रौञ्चभेदन उवाच—

वीर[१२] विद्रूप विश्वेश चिदानन्दस्वरूपिणे[१३] ।
बगलार्चाविधिं चैव वद मे करुणाकर ॥२॥

ईश्वर उवाच—

'सृष्टिं स्थितिं च संहारं'[१४] पूजा च त्रिविधा कलौ ।
केरले सृष्टिरूपा च गर्भकौलागमक्रमात् ॥३॥

अर्चनं गौडदेशे[१५] च[१६] स्थितिमार्गं[१७] कुमारक ।
सारूपा अर्हदेशे तु[१८] संहारार्चनमेव[१९] च ॥४॥

गुप्तं कौलागमं नाम[२०] गौडदेशार्चनादिभिः[२१] ।
कामरूपागमं नाम संहारक्रमपूजनम् ॥५॥

---

१. घ. ०सिद्धिस्तु । २. '–' घ. सर्वैः पूज्यो मुनीश्वरैः । ३. घ. ०सिद्धिश्च । ४. घ. तस्य वक्त्रात् पराङ्मुखी । ५. घ. ०र्चापरं । ६. घ. परा । ७. घ. ग्रस्ते । ८. घ. एव । ९. ख. घ. तत्सम्प्रदाय० । १०. घ. ०त्रयोदशः पटलः । ११. घ. चिन्तयेद् । १२. घ. चिद । १३. घ. स्वरूपक । १४. '–' घ. सृष्टिस्थितिश्च संहार । १५. घ. गौडदेश । १६. घ. स्य । १७. ख. स्थितिमार्गे । १८. '–' ख. घ. कामरूपाख्यदेशे तु । १९. घ. संहारक्रममेव । २०. घ. नाम्ना । २१ घ० गौडदेशेऽर्चनं विधिः ।

लाटार्चनं[1] चावलम्ब्य सांख्यायनमुनिस्तथा ।
उक्तवानागमं[2] चैव सृष्टयर्थं[3] शृणु पुत्रक ॥६॥

सर्वाङ्गसुन्दरीं श्यामां सर्वावयवशोभिनीम् ।
नवोढां पुष्पिणीं चैव प्रार्थयेद्विप्रकन्यकाम् ॥७॥

कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां कुमारक ।
अथवा भौमवारे च निशा[4] भृगुजवासरे[5] ॥८॥

'सुवासिनीं च[6]' तैलेन कुर्यादभ्यंगनं[7] तथा ।
तूलिकातल्पमानीत्वा[8] आस्तीर्योदङ्मुखेषु[9] च ॥९॥

तस्योपरि ततस्तीर्यं[10] शमन्तैर्जातिचम्पकैः ।
कर्पूरं चैव कस्तूरीमिश्रितं चन्दनं तथा ॥१०॥

सर्वाङ्गे लेपनं कुर्याल्लक्ष्मीसूक्तेन बुद्धिमान् ।
पर्य्यङ्कोपरि तत्कन्यां चन्दनेन विलेपिताम् ॥११॥

ध्रुवाद्यैरिति[11] मंत्रेण कुर्याद्दक्षिणतोमुखीम् ।
उन्मुखेत्यर्चनं[12] कुर्यात् श्रीसूक्तेन कुमारक ॥१२॥
पादौ प्रसार्य[13] तत्कन्यां[14] गुप्तेनार्चनमाचरेत् ।
न्यस्त्वा षोढाद्वयं चादौ बगलापञ्जरं न्यसेत् ॥१३॥

कन्यां चैव न्यसेदेवं तत्तदङ्गानि[15] संस्मरेत्[16]
गन्धद्वारेति[18] मंत्रेण कुर्यात् कस्तूरिलेपनम् ॥१४॥

मूलमन्त्रेण चाभ्यर्च्य[19] पुष्पमालां समर्चयेत्[20] ।
निवेदयेद् द्रव्यशुद्धिं तत्रैव जपमाचरेत् ॥१५॥

शतं वाऽथ सहस्रं वा मंत्रराजमिदं सुत ।
पुरश्चरणमध्ये तु प्रतिभार्गववासरे ॥१६॥

---

१. ग. लाजार्चनं । घ. गौडागमं । २. घ. उक्तमार्गक्रमे । ३. घ. सृष्टचर्चां । ४. ख. ग. घ. निशायां । ५. ख. ग. घ. भृगुवासरे । ६. घ. सुवासितेन । ७. ग. ०दभ्यंगना । . ०दभ्यंगकं । ८. घ. ०मानीय । ९. घ. ०मुखेन । १०. ख. घ. समास्तीर्यं । ११. घ. ध्रुवा द्यौरिति । १२. घ. तन्मुखे छयनं । १३. घ. प्रस्तार्यं । १४. ख. तां कन्यां । १५. घ. तत्र चांगानि । १६. ख. घ. संस्पृशेत् । १७. ख. घ. पुस्तकद्वये विशेषः पाठः—

धनंजयपुरं चैव अर्चयेन् (घ. मार्जयेन्) मूलविद्यया ।

१८. घ. गन्धद्वारेण । १९. घ. तस्यैव । २०. ख. घ. समर्पयेत् ।

अथवा पौर्णमास्यां वा सौभाग्यार्चनमाचरेत् ।
प्रयोगसिद्धिदं शस्तं[1] मंत्रसिद्धिकरं परम् ॥१७॥

एतत्पूजां विना पुत्र प्रयोगं न भवेत् कलौ ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रयोगादि च भूतले ॥१८॥

सौभाग्यार्चां विना पुत्र न भवेज्जपकोटिभिः ।
अभिमानाष्टकं त्यक्त्वा त्यक्त्वा चैवेषणात्रयम् ॥१९॥

त्यक्त्वा पञ्चेन्द्रियासक्तिं सौभाग्यार्चनमाचरेत् ।
सुखदुःखे समे[2] कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ॥२०॥

शीतोष्णे[3] समतां कृत्वा सौभाग्यार्चनमाचरेत् ।
षोढाद्वयं च न ज्ञात्वा यः करोत्यर्चनं भुवि ॥२१॥

स पतितो भवेत् पुंसां रौरवं नरकं व्रजेत् ।
बाह्याभ्यंतरतः[4] पुत्र अभेदज्ञानयोर्विना ॥२२॥

सौभाग्यार्चनकर्तॄणामनन्तं[5] शापमाप्नुयात् ।
संकल्पं च विकल्पं च त्यक्त्वा विश्रान्तमानसः[6] ॥२३॥

कुर्यात् सौभाग्यसम्पूजां च नो चेद् भ्रष्टो भवेन्नरः ।
जितेन्द्रियः[7] सुखं त्यक्त्वा कुर्यात् सौभाग्यपूजनम् ॥२४॥

सुखापेक्षेण यत् कुर्याद् देवताशापमाप्नुयात् ।
स्वस्थादेशविधिं[8] चैव न ज्ञात्वा क्रौञ्चभेदन ॥२५॥

यः करोत्यर्चनं चैव स विप्रः पतितो भवेत् ।[9]
स्वपत्नीं भ्रातृपत्नीं वा गुरुभार्यामथापि वा ॥२६॥

अर्चयेत् षड्रसोपेतां[10] सांख्यायनमतं त्विदम् ।
दीक्षालयस्थां रजकीं कुलालगृहकन्यकाम् ॥२७॥

---

१. घ. पुंसां । २. घ. समौ । ३. घ. शीतोष्ण । ४. ग. ब्रह्माभ्यन्तरतः । घ. बाह्याभ्यन्तरयोः ५. घ. ०कर्तॄणां देवता । ६. घ. विश्रान्तमानसः । ७. घ. जिह्वेन्द्रिय । ८. घ. स्वस्थदेशाविधिं । ९. अतः परं ख. घ. पुस्तकद्वये विशेषः—

"कल्पते (करोति घ.) चित्तसंक्षोभं तत्(घ. त्वत्)कन्यायाः कुमारक ।
भ्रान्तचित्तो भवेत् सद्यो (घ. सोपि) वाचस्पतिसमोऽपि वा" ॥

घ. पुस्तकेऽस्मादप्यधिकोऽयमंशो दृश्यते—

"नोत्पादयेत् कामतया वेदनं च शरीरयोः ।
वेदनां जनयेद्यस्तु स नरः पतितो भवेत्" ॥

१०. घ. यौवनोपेतां ।

पुलिन्दकन्यकां चैव मृकण्डुमतमादिशेत् ।
अर्चयेद् ऋषिपत्नीं[1]च पूर्वोक्तां लक्षणान्विताम् ॥२८॥

अर्चयेद्[2] विधिमार्गेण पूजा दूर्वाससम्मता[3] ।
सर्वलक्षणसम्पन्नां पुष्पिणीमर्चयेत्ततः[4] २९॥

मतङ्गमुनिनोक्तं च[5] सद्यः सिद्धिकरं भुवि ।
इति[6] मार्गमतं[7] पुत्र नास्ति सिद्धिर्गुरोर्विना ॥३०॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेनार्चयेद्[8] गुर्वनुज्ञया ॥३१॥

॥ इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे चतुर्दशः पटलः ॥१४॥

॥ अथ पञ्चदशः पटलः ॥

पीतवर्णां मदाघूर्णां दृढपीनपयोधराम् ।
वन्देऽहं वगलां देवीं स्तम्भनास्त्रस्वरूपिणीम् ।

क्रौञ्चभेदन उवाच—

राजराज स वै[9] श्रीमान् रजताद्रिनिकेतन ।
पञ्चास्त्रविद्यां वद मे स्तंभनाख्यान्सपावनान्[10] ॥२॥

ईश्वर उवाच—

आद्यास्त्रं वगलानाम्नी रणस्तम्भनकारणम्[11] ।
उल्कामुखी द्वितीयं[12] च स्तम्भनं भुवनत्रये ॥३॥

ज्वालामुखी तृतीयास्त्रं स्तम्भनं त्रिषु[13] दैवतैः ।
जातवेदमुखी चैव चतुर्थास्त्रं कुमारक ॥४॥

ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्तंभनं नात्र संशयः ।
बृहद्भानुमुखी चास्त्रं पञ्चमं तु कुमारक ॥५॥

षट्पञ्चकोटिचामुण्डा कालिकादिशतं[14] सुत ।
सपादकोटि त्रिपुरा स्तंभनास्त्रं च उत्तमम्[15] ॥६॥

---

१. घ. वैश्यपत्नीं । २. घ. अर्चनं । ३. घ. दुर्वाससंमता ४. घ. पुष्पितां० । ५. घ. मातंगमुनिना चोक्तं । ६. ख. ग. घ. सिद्धि । ७. घ. मार्गगतं । ८. ख. ०प्रयत्नेन वा० । ग. घ. प्रयत्नेन अर्चयेद् । ९. ख. सुख । ग. स चे । घ. सख । १०. ख. स्तंभनाख्यं सुपावनी । घ. स्तंभनाख्यां सुपावनीं । ११. घ. ०कारणीम् । १२. घ. द्वितीया । १३. घ. ऋषि । १४. घ. कालिकोटिशतं । १५. घ. पञ्चमम् ।

पञ्चास्त्रोद्धारमतुलं तत्प्रयोगविधिं तथा ।
वक्ष्ये तस्योपसंहारं साम्प्रतं तव[1] पुत्रक ॥७॥

तारं च विलिखेत् पूर्वं स्तब्धमायामतः परम् ।
वाराहं शक्तिवाराहं वगलामुखि चोच्चरेत् ॥८॥

ह्लां ह्लीं ह्लूं[2] च ततोच्चार्य सर्वदुष्टपदं वदेत् ।
लंकारं[3] दीर्घसंयुक्तं बिन्दुनादविभूषितम् ॥९॥

ह्लैं ह्लौं ह्लश्च[4] ततश्चैव 'वाचं मुखं पदं[5]' वदेत् ।
स्तम्भयद्वितयं प्रोक्त्वा ह्लः ह्लौं ह्लैं[6] च ततो वदेत् ॥१०॥

जिह्वां कीलय उच्चार्य ह्लूं ह्लीं ह्लां[7] च ततः परम् ।
बुद्धिं विनाशयोच्चार्यं शक्तिवाराहमुच्चरेत् ॥११॥

वाराहं बगलाबीजं तारवर्मास्त्रसंयुतम्[8] ।
रणस्तम्भनबाणं च दुर्लभं भुवि पुत्रक ॥१२॥

पञ्चाशदुत्तरं पञ्चबीजबद्धं सुपावनम् ।
ऋषिरेवास्य मंत्रस्य वसिष्ठः[9] छन्दसां पुनः ॥१३॥
पञ्चास्यदेवतामन्त्र-[10] रणस्तम्भनकारिणी[11] ।
न्यासविद्यां च कर्त्तव्यं[12] पूर्वोक्तं मन्त्रराजवत् ॥१४॥

ध्यानं यत्नात् प्रवक्ष्यामि वगलामुखिदेवता ।
पीताम्बरधरां देवीं द्विसहस्रभुजान्विताम् ॥१५॥

अर्द्धजिह्वां गदा चार्द्धं धारयन्तीं शिवां भजे ।
एवं ध्यात्वा जपेन्मंत्रमर्कलक्षं सुबुद्धिमान् ॥१६॥

तालकेन हुनेल्लक्षं ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।
गजाश्वरथसामन्तकोटिकोटिबलं तथा ॥१७॥

निर्वीर्यो जायते सद्यो मृतशेषः[13] पलायते ।
प्रयोगान्ते समभ्यर्च्य मन्त्रसंस्कारमाचरेत् ॥१८॥

---

१. घ. शृणु । २. घ. ह्लूां ह्लौं ह्लूं । ३. घ. नकारं । ४. ह्लूं ह्लौं ह्लुश्च । ५. घ. वाचां मुखपदं । ६. घ. ह्लुः ह्लौं ह्लूं । ७. घ. ह्लूं ह्लीं ह्लां । ८. घ. तारं वर्मा० । ९. क. ख. ग. वशिष्ठः । १०. ख. पञ्चाख्यं देवतामंत्रे । घ. पंक्त्याख्यो देवता चात्र । ११. ख. ग. घ. रूपिणी । १२. ख. कर्त्तव्यां । घ. कर्त्तव्या । १३. क. ग. घ. मृतः शेषाः ।

संस्कारेण विना मन्त्रं साधकस्य प्रमादकृत् ।
लोकालोकस्तंभनं च नाम्ना उल्कामुखी[1] तथा ॥१९॥

मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि शरजन्मन् समासतः ।
तारं च स्तब्धमायां च शक्तिवाराहमेव च ॥२०॥

वगलामुखीपदं चोक्त्वा बीजत्रयं तु सर्वं च ।
दुष्टानां पदमुच्चार्यं पूर्वबीजत्रयं वदेत् ॥२१॥

वाचं मुखं पदं चोक्त्वा पूर्वबीजत्रयं[2] वदेत् ।
स्तम्भयद्वितयं चोक्त्वा 'बीजत्रयं ततो'[3] वदेत् ॥२२॥

जिह्वां कीलय उच्चार्यं पुनर्बीजत्रयं वदेत् ।
बुद्धिं विनाशयोच्चार्यं पूर्वबीजत्रयं[4] वदेत् ॥२३॥
प्रणवं वह्निजायां च उल्कामुख्या अयं मनुः ।[5]
पञ्चाशदूर्द्ध्वं चैवाष्टबीजबद्धं[6] सुपावनम् ॥२४॥
ऋषिश्चाप्यग्निवाराहश्छन्दः[7] ककुभमेव च ।
उल्कामुखी देवता च जगत्स्तम्भनकारिणी ॥२५॥
बीजं च वगलाबीजं शक्तिः[8] स्वाहासमन्वितम् ।
कीलकं शक्तिवाराहं न्यासं पूर्ववदाचरेत् ॥२६॥
ध्यानं यत्नात् प्रवक्ष्यामि मन्त्रभेदे[9] कुमारक ।
विलयानलसंकाशां[10] वीरवेषेण[11] संस्थिताम् ॥२७॥

वीराम्नायमहादेवीं[12] स्तम्भनार्थं भजाम्यहम् ।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं मनुलक्षं कुमारक ॥२८॥

प्रपञ्चस्तम्भनं कृत्वा स्वविद्यां च प्रकाशयेत् ।
तालकेन हुनेत् पुत्र लक्षमेकं हुताशने[13] ॥२९॥
मंत्रसिद्धिर्भवेत् पुत्र त्रैलोक्ये कीर्त्तिमान् भवेत् ।
तस्याज्ञया जगत्सर्वं स्थावरं जङ्गमात्मकम् ॥३०॥

कुमारक प्रवर्त्तन्ते[14] सर्वाश्चर्यंकरं भुवि ।
'सिद्धिं चतुर्विधां'[15] चैव एतन्मन्त्रस्य जापके ॥३१॥

१. घ. चोल्कां मुखी । २. घ. पुनर्बीजत्रयं । ३. घ. पुनर्बीजत्रयं । ४. घ. पुनर्बीज० । ५. घ. स्तब्धमायां ध्रुवं वह्निजायांतोल्कामुखीमनुः । ६. घ. ०बीजयुक्तं । ७. घ. ऋषिश्च । यज्ञवाराहश्छन्दः । ८. घ. शक्ति । ९. घ. मन्त्रभेदं । १०. घ. विनया० । ११. ख. वीरवेशेन । घ. वीरावेशेन । १२. घ. विराण्मयीं महादेवीं । १३. क.ख.ग. क्षपाशनः । १४. घ. प्रवर्त्तत । १५. ख. घ. सिद्धिश्चतुर्विधा ।

इच्छया वर्त्तते सर्वमाश्चर्यंकरमादरात् ।
नदी नदश्च[1] रतिमान्[2] नानापादपसंकुलम् ॥३२॥
आगच्छेत्याज्ञया[3] तस्य पुनर्गच्छन्ति चादरात्[4] ।
किन्न स्यात् पद्ययुक्तानि माहात्म्यं पदगं मनोः[5] ॥३३॥
कामयेन्मन्त्रमेतद्धि[6] क्रौंचभेदनकोविद ॥

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे पञ्चदशपटलः[7] ॥१५॥

॥ अथ षोडशः पटलः ॥

बन्धूककुसुमाभासां[8] बुद्धिनाशनतत्पराम् ।
वन्देऽहं वगलां देवीं स्तम्भनास्त्राधिदेवताम् ॥१॥

क्रौञ्चभेदन उवाच—
नमस्ते गिरिजानाथ मन्त्रविद्यागमप्रभो ।
अधुना चास्त्रविस्तारं वद मे करुणाकर ॥२॥

ईश्वर उवाच—
तारं च स्तब्धमायां च प्रासादं[9] च ततः परम् ।
पुनर्लिख्य[10] स्तब्धमायां प्रणवं च ततः परम् ॥३॥
वगलामुखिपदं चोक्त्वा सर्वदुष्टपदं वदेत् ।
न(ल?)कारं दीर्घसंयुक्तं बिन्दुना भूषितं तथा ॥४॥
बीजपञ्चकमुच्चार्य वाचं मुखं पदं वदेत् ।
स्तंभयद्वयमुच्चार्य पञ्चबीजानि चोच्चरेत् ॥५॥
जिह्वां कीलय उच्चार्य पञ्चबीजानि चोच्चरेत् ।
बुद्धिं विनाशययुगं[11] पञ्चबीजानि चोच्चरेत् ॥६॥
वह्निजायासमायुक्तं[12] षष्टिवर्णात्मकं[13] मनुम्[14]।[15]
जातवेदमुखीमन्त्रं जगदाश्चर्यकारकम् ॥७॥
अर्कपञ्चकवर्णेन बद्धोऽयं मन्त्रनायकः ।
ऋषिः कालाग्निरुद्रस्तु पंक्तिश्छन्द उदाहृतम् ॥८॥

---

१. घ. नदाश्च । २. घ. गिरयो । ३. घ. आगच्छन्त्याज्ञया । ३. घ. सादरात् ।
५. ग. किन्न तस्यात्पद्ययुक्तानि० । घ. पुस्तके विशेषः—
किं तस्य जपयुक्तानां माहात्म्यं चेदृशं मनोः ।
यद्गोपयति पुण्यात्मा त्रैलोक्याकर्षणक्षमः ॥
६. घ. गोपयेन्मंत्र० । ७. घ. ०अस्त्रप्रयोग पञ्चदशपटलः । ८. घ. भाषां । ९. ख. ग. प्रसादं । १०. घ. पुनर्लिखेत् । ११. घ. नाशययुग्मं च । १२. ख. ०समायुक्तः । १३. ख. ०त्मको । १४. ख. मनुः । १५. पादद्वयं घ. पुस्तके नास्ति ।

जातवेदमुखी मंत्रदेवता[1] समुदाहृता ।
ॐ बीजं ह्लीं[2] च शक्तिश्च हूं कीलकमुदाहृतम् ॥९॥

पूर्ववन्न्यासविद्यां[3] च ध्यानं वक्ष्यामि पुत्रक ।
जातवेदमुखी देवी देवता प्राणरूपिणी ॥१०॥

भजेऽहं स्तम्भनार्थं च स्तम्भनीं[4] विश्वरूपिणीम्[5] ।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं त्रिशल्लक्षं सुपावनम् ॥११॥

चर्मधृग्वसनो भूत्वा चिन्तितार्थप्रदं ध्रुवम् ।
गन्धर्वांश्चैव यक्षांश्च गरुडोरगपन्नगान् ॥१२॥

वेतालडाकिनीप्रेतशाकिनीब्रह्मराक्षसान् ।
ऋषिदेवगणांश्चैव सिद्धानन्यांश्च पुत्रक ॥१३॥

अधुना स्तम्भयत्येतत्[6] सत्यं शङ्करभाषणम् ।
तारं च स्तब्धमायां च वह्निबीजं च पंचकम् ॥१४॥

प्रस्फुरद्वितयं चैव बीजं चैव[7] त्रयोदश ।
ज्वालामुखी 'पदं चोक्त्वा'[8] वदेद्बीजं[9] त्रयोदश ॥१५॥

सर्वशब्दं ततोच्चार्य दुष्टानां पदमुच्चरेत् ।
बीजं[10] त्रयोदशं चोक्त्वा वाचं मुखं पदं वदेत् ॥१६॥

स्तम्भयद्वितयं चोक्त्वा पुनर्बीजं[11] त्रयोदश ।
जिह्वां कीलय चोच्चार्य[12] पुनर्बीजं त्रयोदश ॥१७॥

बुद्धिं 'विनाशयं चोक्त्वा'[13] पुनर्बीजं त्रयोदश ।
वह्निजायासमायुक्तं ज्वालामुख्यमयं[14] मनुः[15] ॥१८॥

शतोत्तरं भवेद्विंशद्बीजबद्धो मनुस्त्वयम् ।
अत्रिश्च ऋषिरेवात्र[16] गायत्रीछन्द उच्यते[17] ॥१९॥

ज्वालामुखी देवता च स्तम्भनाय त्रिमूर्त्तिभिः ।
ध्यानं यत्नात् प्रवक्ष्यामि न्यासं पूर्ववदाचरेत् ॥२०॥

---

१. घ. देवीं देवता । २. ख. घ. ह्लीं । ३. घ. ०विद्याः । ४. घ. स्तम्भनी । ५. घ. विश्वरूपिणी । ६. घ. मनूनां संभवेत्येतत् । ७. घ. न्योत । ८. घ. च उच्चार्य । ९. क. वोज । १०. घ. बीजा । ११. ०बीजा । १२. घ. युग्मं च । १३. घ. नाशययुग्मं च । १४. ख. ज्वालामुख्यास्त्वयं । १५. घ. स्तब्धमामाभिवह्निजाया ज्वालामुखीमनुः । १६. घ. ०रेवास्य । १७. घ. एव च ।

ध्यानं विना भवेन् मूकः सिद्धमन्त्रोऽपि पुत्रक ।
ज्वालापुञ्जसटोन्मुक्तां[1] कालानलसमप्रभाम् ॥२१॥
चिन्मयीं स्तंभनीं देवीं भजेऽहं विधिपूर्वकम् ।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रमर्कलक्षं सुबुद्धिमान् ॥२२॥
तर्पणं च गवां क्षीरैस्तालकेन हुनेत् सदा ।
तर्पणं च चतुर्ल्लक्षं लक्षमेकं हुनेत्सदा[2] ॥२३॥
सहस्रद्वितयं चैव 'ब्राह्मणानां सुभोजयेत्'[3] ।
त्रिमूर्त्ति स्तम्भयेन्मंत्री पञ्चतत्वान्यपि क्षणात् ॥२४॥
आश्चर्यदं महामन्त्रं नराणां दुर्ल्लभं भुवि ।
इदानीं मन्त्रराजं च बृहद्भानुमुखाह्वयम् ॥२५॥
'मारणं स्तंभवाणं'[4] च आश्चर्यं च कलौ युगे ।
तारं ह्ल्रूँ ह्ल्रीँ च उच्चार्य ह्ल्रूँ ह्ल्रूँ ह्ल्रौं च ततः परम् ॥२६॥
ह्लूस्तथाप्युच्चरेत् पुत्र ह्ल्रां ह्ल्रीं ह्ल्रूँ च ततः परम् ।
ह्ल्रूँ ह्ल्रौं ह्लूश्च ततश्चोक्त्वा[5] वगलामुखिपदं वदेत् ॥२७॥[6]
सर्वशब्दं ततोच्चार्य दुष्टानां पदमुच्चरेत् ।
वाचं मुखं पदं चोक्त्वा स्तम्भयद्वयमुच्चरेत् ॥२८॥
आद्यबीजं पुनश्चोक्त्वा[7] उद्धरेत् पुनराद्यवत् ।[8]
जिह्वां कीलय उच्चार्य पूर्ववद् बीजमुद्धरेत् ॥२९॥
बुद्धिं विनाशयोच्चार्य[9] पूर्वबीजानि[10] चोच्चरेत्[11] ।
वह्निजायासमायुक्तो बृहद्भानुमुखीमनुः ॥३०॥[12]
सविता च ऋषिः ख्यातो[13] गायत्रीछन्द एव च ।
देवता स्तम्भनार्थं च बृहद्भानुमुखी तथा ॥३१॥

१. घ. ज्वलपुंसजटामुक्त। २. घ. ०सुत। ३. ख. ब्राह्मणान् सुत भोजयेत्। ४. घ. रणस्तम्भनबाणं। ५. घ. ततस्तारं। ६. अतः परमयमंशो दृश्यते घ. पुस्तके—
"आद्यबीजं मनोः संख्या उद्धरेत् पुनरादरात्"
७. घ. मनोः संख्या। ८. घ. पुनरादरात्। ९. घ. नाशय उच्चार्य्यं। १०. घ. पूर्वबीजं। ११. घ. समुच्चरेत्। १२. घ. पुस्तके त्वयमंशो विशेषः—
स्तब्धमाया तारकं च वह्निजायान्तकं सुत।
बृहद्भानुमुखीमंत्रं षडुत्तरशतार्णवे" ॥
१३. घ. ऋषिश्चात्र।

बीजं च बगलाबीजं शक्तिर्माया कुमारक ।
कीलकं प्रणवं चात्र विनियोगस्ततः[1] परम्[2] ॥३२॥

पूर्ववन्न्यासविद्यां च तन्त्रराजवदाचरेत् ।
ध्यानं यत्नात् प्रवक्ष्यामि मन्त्रभेदेन पुत्रक ॥३३॥

कालानलनिभां देवीं ज्वलत्पुञ्जशिरोरुहाम् ।
कोटिबाहुसमायुक्तां वैरिजिह्वासमन्विताम्[3] ॥३४॥

स्तम्भनास्त्रमयीं देवीं दृढपीनपयोधराम् ।
मदिरामदसंयुक्तां[4] बृहद्भानुमुखीं भजे[5] ॥३५॥

एवं ध्यात्वा जपेन्मंत्रमर्कलक्षं कुमारक ।
तर्प्पयेत्तद्दशांशं च गुडोदकसमन्वितम् ॥३६॥
तालकेन हुनेत्तस्य दशांशं संस्कृताग्निना ।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात् तद्दशांशं कुमारक ॥३७॥
मन्त्रान्ते च प्रकर्त्तव्यं सौभाग्यार्चनमादरात् ।
सौभाग्यार्चां विना पुत्र मन्त्रसिद्धिर्न जायते ॥३८॥
पञ्चास्त्रमन्त्रसिद्धिर्हि दिवि देवेषु दुर्लभा[6] ।
गोपयेत् सर्वदा पुत्र[7] 'गुप्ता वीर्यवती'[8] भवेत् ॥३९॥
'न कर्त्तव्यः प्रयोगोऽस्य'[9] शपथादि[10] कदाचन ।
यः करोति प्रयोगं च देवताशापमाप्नुयात् ॥४०॥

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे षोडशः पटलः ॥१६॥

॥ अथ सप्तदशः पटलः ॥

[11]'जिह्वाग्रमादाय 'करेण देवीं'[12] 'वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्'[13] ।
पीताम्बरां पीनपयोधराढ्यां[14] सदा 'स्मरेऽहं बगलाम्बिकां'[15] हृदि ॥१॥

क्रौञ्चभेदन उवाच—

चन्द्रचूड नमस्तेऽस्तु इन्दिरापतिपूजित ।
शताक्षरीमहामंत्रं बगलायाश्च मे वद ॥२॥

---

१. घ. विनियोगं च । २. घ. संस्मृतम् । ३. घ. ललज्जिह्वासमन्विताम् । ४. घ. मदिरामोदसंयुक्तां । ५. घ. भजेत् । ६. घ. दुर्लभम् । ७. घ. पुत्रा । ८. घ. गोप्ता वीर्यपतिर् । ९. घ. न कर्त्तव्यं प्रयोगांश्च । १०. ख. घ. आपद्यपि । ११. इतः पूर्वमयमंशो घ. पुस्तके—'हरीहरेश्च समर्था' । १२. घ. करद्वयेन । १३. घ. मुत्पाटयन्तिमरिशक्तियुक्ताम् । १४. घ. पीत० । १५. घ. स्मरेयं बगलामुखीं ।

ईश्वर उवाच—

मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि पुरश्चर्याविधिं तथा ।
प्रयोगं चोपसंहारं वक्ष्येऽहं तव पुत्रक ॥३॥

स्तब्धमायां च वाग्बीजं माया मन्मथमेव च ।
श्रीबीजं[1] शक्तिवाराहं 'वगलामुखि चोच्चरेत्'[2] ॥४॥

स्फुरद्वयं तथा चोक्त्वा सर्वशब्दं[3] ततोच्चरेत् ।
दुष्टानां पदमुच्चार्य वाचं मुखं पदं वदेत् ॥५॥

स्तम्भयद्वयमुच्चार्य प्रस्फुरद्वयमुच्चरेत् ।
विकटाङ्गीपदं चोक्त्वा घोररूपीपदं[4] वदेत् ॥६॥

जिह्वां कीलय उच्चार्य[5] महाशब्दं ततोच्चरेत् ।
पश्चाद्भ्रमकरी चैव बुद्धिं नाशय उच्चरेत् ॥७॥
विरामयपदं[6] चोक्त्वा 'सर्वप्रज्ञामयीति च'[7] ।
प्रज्ञां नाशय उच्चार्य उन्मादीकुरु[8] युग्मकम् ॥८॥

मनोपहारिणीं चोक्त्वा स्तंभमायां[9] समुच्चरेत् ।
शक्तिवाराहबीजं च लक्ष्मीबीजं[10] ततः परम् ॥९॥

कामराजं च हृल्लेखां वाग्भवं तदनन्तरम् ।
स्तब्धमायां ततोच्चार्य वह्निजायासमन्वितम् ॥१०॥

शताक्षरीमहामन्त्रं वगलानाम पावनम् ।
ब्रह्मा ऋषिश्च छन्दोऽस्य गायत्री समुदाहृता ॥११॥

देवता वगलानाम्नी जगत्स्तम्भनकारिणी ।
ह्ल्रीं बीजं शक्तिरित्येवं वाग्भवं कीलकं तथा ॥१२॥

पूर्वोक्तां न्यासविद्यां च वगलापञ्जरादयः ।
न्यासानुक्तक्रमेणैव[11] 'जपाद्यं पंच एव च'[12] ॥१३॥

पीताम्बरधरां सौम्यां पीतभूषणभूषिताम् ।
स्वर्णसिंहासनस्थां च मूले कल्पतरोरधः[13] ॥१४॥

---

१. घ. रमां च । २. ह्ल्रींकारं बगलामुखीं । ३. घ. सर्वं शब्दं । ४. घ. घोररूपं पदं । ५. घ. मुच्चार्य । ६. घ. विराण्मयीपदं । ७. घ. सर्वप्रज्ञामयीत्यरे । ८. घ. उन्मादं कुरु । ९. घ. स्तब्धमायां । १०. घ. रमाबीजं । ११. घ. न्यासमुक्तक्रमेणैव । १२. ख. जपादावाचरेत् सुधीः । घ. जपादावन्त्यमेव च । १३. घ. ०स्तथा ।

वैरिजिह्वाभेदानार्थं[1] छुरिकां[2] बिभ्रतीं शिवाम् ।
पानपात्रं गदां पाशं धारयन्तीं भजाम्यहम् ॥१५॥

एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रमर्कलक्षं क्षपाशनः ।
तर्प्पयेद्धेतुमिश्रेण वारिणा वाथ पुत्रक ॥१६॥

'जातिपंचकसंमिश्रजलेन'[3] च कुमारक ।
पूजायुतं[4] च सन्तर्प्य ह्यर्चितेन जलेन च ॥१७॥

त्रिमध्वक्तं पायसेन[5] अथवा पायसाज्ययोः ।
चरुणा वा हुनेत् पुत्र[6] सहस्रं तत्त्वसंख्यया ॥१८॥

नानादेहजरोगांश्च कृत्रिमग्रहसंभवान् ।
यावकांश्च[7] प्रयोगांश्च[8] 'तुल्यधातुसमुद्भवान्'[9] ॥१९॥

सद्योनाशनमायान्ति मन्त्रहोमेन साधकः ।
'साज्यसक्तुघृताक्त'[10] च शमन्तकुसुमेन वा ॥२०॥

षट्सहस्रं हुनेत् पुत्र स्थण्डिले वाथ कुण्डके ।
वशीकरं च संमोहं कीर्त्तिः प्रज्ञा भवेद् ध्रुवम् ॥२१॥

तालकेन हुनेत् पुत्र सहस्रं वसुसंख्यया ।
कुण्डे चैव भगाकारे राजताग्नौ[11] कलौ निशा ॥२२॥

स्तम्भनं च भवेत् पुत्र नात्र कार्या विचारणा ।
अर्क्कैश्च पिचुमर्द्दैश्च[12] समिधः[13] संग्रहेन्नरः ॥२३॥

प्रत्येकं त्रिसहस्रं च प्रादेशसमिधा क्रमः[14] ।
मन्त्रं सर्वं समुच्चार्य समिधाद्वयमेव च ॥२४॥

हुनेद् ध्यानसमायुक्तः सद्यो विद्वेषणं भवेत् ।
विभीतकस्य समिधो ग्राह्यास्तु[15] त्रिसहस्रकम् ॥२५॥

षट्कोणकुण्डे जुहुयान्निशायां कृष्णपक्षके ।
स्थावरांश्च गिरींश्चैव नदीपादपसंकुलान्[16] ॥२६॥

---

१. घ. ०छेदनार्थं । २. घ. क्षुरिकां । ३. ख. ग. घ. जाती(ति) चंपक० । ४. घ, बाणायुतं । ५. घ. पायसं च । ६. घ. पुस्तकेऽस्मात्परमधिकोंऽशो दृश्यते —
'पर्यायफलदायक । तर्पणेन हुनेत्पुत्र' ।
७.-८. घ. यावकाश्च प्रयोगाश्च . ९. ख. ग. घ. शल्प(ल्य)धातु० । १०. ख. शाली सक्तु० । ग. साज्यसक्तु० । घ. शालिशक्तुघृताक्ता च । ११. घ. रजकाग्नौ । १२. ख. पिचुमर्द्दश्च । १३. घ. समिधा । १४. ख. ग. प्रादेशसमिधः क्रमः । घ. प्रादेशसमिधाक्रमात् । १५. क. ग्रह्यास्तु । ग. ग्रह्याशु । १६. घ. नदीपादपसंकुसुमं तथा ।

क्षणादुच्चाटनं कुर्याद् होमस्यास्य प्रभावतः ।
निम्बतैलेन संयुक्तं शाल्मलीकुसुमं तथा ॥२७॥[1]

जुहुयाद्देवतां[2] ध्यात्वा[3] मारणं भवति ध्रुवम् ।
षट्कर्मनिर्माणमिद[4] सुसिद्धं
शताक्षरीमन्त्रमशेषदुःखहम् ।
होमेन संस्तम्भनमाचरेद् बुधो-
विद्यासुसिद्धं मुनिगुह्यमादरात् ॥२८॥

॥ इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे सप्तदश[5] पटलम्[6] ॥१७॥

॥ अथ अष्टादशः पटलः ॥

नमस्ते जगतां[7] देवीं जिह्वास्तंभनकारिणीम् ।
भजेऽहं शत्रुनाशार्थं[8] साधकासक्तमानसाम्[9] ॥१॥

क्रौञ्चभेदन उवाच—

सम्यग्ज्ञान[10] महेशान नित्यनित्यस्वरूपक[11] ।
चन्द्रचूड नमस्तेऽस्तु प्रयोगं वद मे प्रभो ॥२॥

ईश्वर उवाच—

षट्सहस्रं हुनेत् पुत्र दूर्वाहोममतन्द्रितः ।
'सम्यग् विषज्वरं'[12] हन्ति वगलायाः प्रसादतः ॥३॥

कुशेन जुहुयात्तस्य तापज्वरहरं[13] परम् ।
हुनेत् तावत् श्वेतदूर्वा ज्वरं चातुर्थिकं हरेत् ॥४॥

त्रिमध्वक्तं[14] श्वेतदूर्वां षट्सहस्रं हुनेत् क्रमात् ।
नानाविधं गरं हन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥५॥

दधिमिश्रं गुडूचीभिः शर्करागुडसम्मितम्[15] ।
जुहुयात् षट्सहस्रं तु नानामेहनिवारणम् ॥६॥

---

१. घ. पुस्तके श्लोकोऽयं नास्ति । २. घ. जुहुयादयुतं । ३. घ. ध्यायन् । ४. घ. षट्ककर्माणि मिदं । ५. ग. सप्तदशम । घ. सप्तदशः । ६. घ. पटलः । ७. घ. बगला । ८. घ. शत्रुनाशाय । ९. घ. मदिरासवत० । १०. घ. सत्यज्ञान । ११. घ. नित्यानित्य० । १२. घ. सद्यस्तापज्वरं । १३. घ. शीतज्वर० । १४. घ. त्रिमधुक्ता । १५. ख. मिश्रितम् ।

सर्षपं लवणोपेतं पूर्ववज्जुहुयान्नरः ।
नाशयेद् गुल्मरोगं[१] च औषधेन विना महत् ॥७॥

षट्सहस्रं हुनेत् पुत्र शर्कराज्यसमन्वितम् ।
'पित्तोद्रेकादिसर्वांश्च[२]' रोगान्नाशयति[३] ध्रुवम् ॥८॥

शालिसक्तुं[४] घृतोपेतं[५] वशीकरणमुत्तमम् ।
लाजाहोमं[६] षट्सहस्रं लभेद्वाञ्छितकन्यकाम् ॥९॥

हरिद्राखंडहोमं[७] तु षट्सहस्रं[८] सुबुद्धिमान् ।
गर्भस्तंभो भवेन्नारी सापि वश्या[९] भवेद् ध्रुवम् ॥१०॥

केतकीदलहोमेन गणिका वश्यमाप्नुयात्[१०] ।
हुनेत् पद्मदलेनैव नेत्ररोगं विनश्यति ॥११॥

मल्लिकाकुसुमेनैव अधिका च मतिर्भवेत्'[११] ।
जातीफलेन जुहुयादुन्मत्तो जायते रिपुः ॥१२॥

षट्सहस्रं देवकुसुमं[१२] शर्कराज्यसमन्वितम् ।
बुद्धिगं[१३]चैव चाञ्चल्यं संज्ञानमुन्मतिस्तथा[१४] ॥१३॥

अलीकेन[१५] क्षुद्रमतिर्दुर्बुद्धिः सिद्धबुद्धिता[१६] ।
तत्क्षणान्नाशमाप्नोति तमः सूर्योदये[१७] यथा ॥१४॥

मांसं संपुटसंयुक्तं[१८] 'द्रव्येण सममेव च'[१९] ।
अयुतं जुहुयाद्रात्रौ सद्यो धनपतिर्भवेत् ॥१५॥

मध्वाक्तं 'छागमांसं च'[२०] त्रिसहस्रं हुनेत् सुत ।
'भूलाभं जायते'[२१] शीघ्रं ग्रामादिपतिरेव[२२] च ॥१६॥

गौडोद्रव्येण जुहुयात् सहस्रं बाणसंख्यया ।
बहुमूत्रादिरोगांश्च नाशयेत्तान्[२३] न संशयः ॥१७॥

---

१. ग. रुग्मरोगं । २. घ. पैत्त्योद्भवांश्च शतशो । ३. ०नाशयेद् । ४. ख. ग. घ. शालिशक्तु । ५. घ. सितोपेतं । ६. घ. लाजहोमात् । ७. घ. होमस्तु । ८. क. सहस्रं । ९. ख. वश्या । १०. घ. ०मादरात् । ११. ख. वाधिका शुभमतिर्भवेत् । १२. घ. देवपुष्पं । १३. ख. उद्वेगं । १४. उच्चाटकमतिस्तथा । १५. ख. अविवेक घ. अविवेको । १६. ख. मन्दबुद्धिता । घ. सिद्धिबुद्धिता । १७. घ. सूर्योदयो । १८. ख. तु कुक्कुटस्यैव । घ. कुक्कुटसंभूतं । १९. घ. त्रिमधुः सहितेन । २०. घ. छागपिशितं । २१. घ. सुलभं च भवेच् । २२. घ. ग्रामाधि० । २३. क. ग. घ. नाशयंति ।

माध्वीद्रव्येण जुहुयात् षट्सहस्रं क्रमेण च ।
ज्वरपैक्ष्यादिरोगांश्च[1] सद्यो नाशनमाप्नुयात् ॥१८॥
पैष्टीद्रव्येण जुहुयान्निशास्वष्टसहस्रकम् ।
संग्रहग्रहणीरोगं सद्यो नाशनमाप्नुयात् ॥१९॥
अन्नेन 'अन्वहो हुत्वा'[2] अन्नदानपतिर्भवेत्[3] ।
घृतेन कान्तिमान् भूत्वा[4] नारीणामात्मदो[5] भवेत् ॥२०॥
क्षीरेण भ्रमनाशश्च दध्ना तापननाशनम्[6] ।
पञ्चगव्येन जुहुयात् पूर्ववत् पाप नाशयेत्[7] ॥२१॥
गोमूत्रेण हुनेन्मन्त्री[8] षट्सहस्रं क्रमेण च[9] ।
तालीमद्येन[10] जुहुयात् स्त्रीणामाकर्षणं भवेत् ॥२२॥
खर्जूरजेन द्रव्येण पुंसामाकर्षणं भवेत् ।
तिलतैलेन जुहुयात् सर्वाकर्षणमाप्नुयात् ॥२३॥
एरण्डतैलेन जुहुयाद्[11] वाचाकर्षणमाप्नुयात्[12] ।
कुसुंभतैलहोमेन[13] काकगृध्राननेकशः[14] ॥२४॥
आकर्षणं भवेच्छीघ्रं खेचराः पक्षिजातयः[15] ।
यवना[16] पानहोमेन अग्निमध्याद्रिपुः[17] स्वयम् ॥२५॥
रोगी च जायते मासाच्छिवस्य वचनं यथा ।
जुहुयादारनालेन पित्तरोगी भवेद्रिपुः ॥२६॥
निम्बपत्रद्रवेणैव वातरोगी भवेद्रिपुः ।
मोहिनीपत्रजद्रावैः[18] श्लेष्मरोगी भवेद्रिपुः ॥२७॥

---

१. ग घ. ज्वरपैत्यादि० । २. घ. हुत्वान्नकामी । ३. घ. ०दानपरो० । ४. घ. हुत्वा । ५. नारीणां मन्मथो । ६ घ. तापनिवारणम् । ७. घ. पापशान्तये । ८. घ. हुनेद्धीमान् । ९. घ. पुस्तके विशेषः—

'विदारं विवशो भावाद्रिपुर्भ्रान्तो भविष्यति' ।

१०. ख. तालीमयेन । घ. तालमद्येन । ११. घ. एरण्डतैलहोमेन । १२. घ. गजाकर्षण० ।
१३. ख. ग. घ. पुस्तकेष्वतः परमयमंशो दृश्यते विशेषः—

'[illegible]मात्रतः । जलजानां च होमेन[घ. जलजाश्चैव यो भेदा)भवेदाकर्षणं सुत ।
[illegible]तैलहोमेन' ।

१४. घ. काकगृध्राण्यनेकशः । १५. घ. पक्षिजा यतः । १६. ख. यवनां । घ. यावताल[illegible] । १७. घ. अग्निमांद्यं रिपोः । १८. ख. मोहिपत्रजतद्रावैः ।

अर्कपत्रद्रवेणैव क्षयरोगी भवेद्रिपुः ।[1]
'वज्रीक्षीरेण संयुक्तमारनालेन[2] पुत्रक ॥२८॥

जुहुयात् षट्सहस्रं तु वगलाध्यानपूर्वकम् ।
नाडीव्रणसमायुक्तो[3] (:) षण्मासान्म्रियते रिपुः ॥२९॥

गरं[4] च तिलतैलं च आरनालयुतेन च ।
'ग्रामे वा नगरे वाथ[5] वगलाध्यानपूर्वकम् ॥३०॥

'स्फोटव्रणाश्च जायन्ते'[6] रिपोर्योजनमात्रतः[7] ।[8]
तिलतैलेन संयोज्य यावनालान्नमेव[9] च ॥३१॥

जुहुयात् पूर्ववच्छत्रु[10]र्मण्डलाच्छिन्नशीर्षकः[11] ।
कर्पूरमिलितं[12]चैव तिलतैलं हुनेत् सुधीः[13] ॥३२॥

मारणं[14] मण्डलाच्छत्रो[15]र्नात्र कार्या विचारणा ॥३४॥

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे अष्टादशःपटलः ॥१८॥

॥ अथैकोनविंशः पटलः ॥

चतुर्भुजां त्रिनयनां पीतवस्त्रधरां शुभाम्[16] ।
वन्देऽहं वगलां देवीं शत्रुस्तंभनकारिणीम् ॥१॥

---

१. सप्तविंशतिपद्योत्तरार्द्धस्याष्टाविंशतिपद्यपूर्वार्द्धस्य च स्थानेऽयमंशो लभ्यते घ. पुस्तके–

'पत्रं विभीतकोद्भूतं तस्य स्वरसहोमतः
जातिभ्रष्टो भवेच्छत्रुर्नान्यथा शिवभाषितम् ॥
तत्कारिपत्रजद्रावैः कर्मभ्रष्टो भवेद्रिपुः ।
निर्गुण्डीपत्रजद्रावैर्ज्वररोगी भवेद्रिपुः ॥
कर्पासपत्रजद्रावैर्होमेन कुमारक ।
बद्धकोष्ठाश्च रोगस्य स्वभावेनैवसिद्ध्यति ॥
हरीतकीश्च होमेन व्रणरोगी भवेद्रिपुः ।

२. घ. वज्रक्षीरेण संमिश्र० । ३. घ. नाडीव्रणपरो भूत्वा । ४. घ. अगरं । ५. घ. पुस्तके विशेषः—

नगरे वाथ ग्रामे वा अर्कक्षीरं चारनालं पूर्ववज्जुहुयात् क्रमात् ।
भगंदरव्रणो भूत्वा षण्मासान् म्रियते रिपुः ॥

६. घ. फोटकव्रहा रोगेन । ७. घ. रिपुर्यो० । ८. अतः परमंशः ख. घ. पुस्तके विशेषः

'म्रियते नात्र सन्देहः शिवस्य वचनं यथा ।

९. क. ख. पावनालान्नमेव १०. घ. पूर्ववत्पुत्र । ११. ख. ग. छिन्नसंशयः । घ. ०शत्रुमारणम् । १२. घ. ०मिश्रितं । १३. घ. सुत । १४. घ. म्रियते । १५. घ. च्छत्रु । १६. घ. शिवाम् ।

स्कन्द[1] उवाच—

नमस्ते योगिसंसेव्य नमः[2] कारुणिकोत्तम ।
प्रयोगं चोपसंहारं वद मे सर्वमङ्गल ॥२॥

ईश्वर उवाच—

प्रेताङ्गारमषीं[3] कृत्वा सितवस्त्रेण[4] बुद्धिमान् ।
शल्यं[5] तदन्तरे भस्म वैरिनाम[6] च संलिखेत् ॥३॥

'एकार्णां बगलां देवीं[7] ' वेष्टयेत् सम्यगादरात् ।
'शताक्षरीं च संवेष्टय ईशानादिषु[8] ' वेष्टयेत् ॥४॥

तद्वस्त्रं[9] गुलिकीकृत्य[10] वेष्टयेत् प्रेतरज्जुना ।
भौमवारे समानीय स्थापयेद् वृक्षकोटरे ॥५॥

वृक्षमूले जपेन्मन्त्रममुतं ध्यानपूर्वकम् ।
पुत्रदारादिसंयुक्तः पक्षाच्छत्रुर्मृतो भवेत् ॥६॥

भूर्जपत्रे[11] लिखेन्नाम[12] वगलाबीजमध्यमम् ।
कोटरे स्थापयेत् पुत्र विभीतकतरोस्तथा ॥७॥

जिह्वास्तम्भं भवेच्छत्रोः पक्षमात्रेण पुत्रक ।
बृहस्पतिसमो वापि वाचस्पतिसमोऽपि वा ॥८॥

तालमध्ये लिखेन्नाम वगलाबीजमध्यमम्[13] ।
प्राणप्रतिष्ठां कृत्वाऽथ[14] निर्दहेद्[15] दीपवह्निना ॥९॥

जपेत्तत्र सहस्रैकं शताक्षरमनुं[16] तथा ।
जिह्वास्तंभं भवेच्छीघ्रं[17] शेषभाषापतिः स्वयम् ॥१०॥

प्रेतभाण्डे लिखेन्नाम प्रेताङ्गारेण[18] साधकः ।
प्राणस्थापनकं कृत्वा रवौ रात्रौ सुबुद्धिमान् ॥११॥

प्रेताग्नौ प्रेतकाष्ठे तु[19] निर्दहेत् प्रेतकानने ।
नग्नः श्मशानमध्ये तु जपेद् दक्षिणदिङ्मुखः ॥१२॥

---

१. घ. क्रौञ्चभेदन । २. घ. महा । ३. ख. ०मयों । घ. मर्शि । ४. घ. प्रेतवस्त्रे च । ५. ख. ग. घ. शल्पं । ६. घ. श्ररि० । ७. घ. एकाक्षरीं च वगलां । ८. घ. मंत्रशताक्षरींमिश्च ईशान्ये दिक्षु । ९. क. घ. तद्वस्त्र । १०. घ. गुटिकीकृत्य । ११. ग. घ. भूर्यपत्रे । १२. घ. रिपुर्नाम । १३. ख. ग. घ. ०मध्यगम् । १४. घ.० तु । १५. ग. निर्देही । १६. घ. शताक्षरिमनु । १७. ०च्छत्रोः । १८. प्रेतांमारणे १९. घ. षु ।

सहस्रं ध्यानपूर्वं तु प्रातर्यामे समासतः[1] ।
एवं कृत्वा तु[2] सप्ताहं ज्वरस्थो जायते भुवि ॥१३॥

मासान्मृत्युवशो[3] भूत्वा विनश्यति न संशयः ।
श्रीसूक्तमार्जनेनैव तन्मन्त्रेणाभिमन्त्रितम् ॥१४॥

शतमष्टोत्तरं चैव[4] सहस्रं वा कुमारक ।
मंत्रितोदकपानेन पुण्यं सुखमवाप्नुयात् ॥१५॥

चिताभस्म[5] चिताङ्गारं चितान्नं[6] च कुमारक ।
मोहिनीपत्रजद्रावैर्मर्द्दयेत् सूक्ष्मतोऽनघ ॥१६॥

समं समं रिपूच्छिष्टं मर्द्दयेत् कल्पयेत् पुनः ।
'चतुरङ्गुलां पुत्तलीं'[7] कुर्यात् सर्वाङ्गसंयुताम् ॥ ७॥

हृदि तन्नाम चालिख्य ललाटे वगलां लिखेत्
सर्वाङ्गे चाग्निबीजं च लिखेद् बिन्दुं च निर्द्दहेत् ॥१८॥

प्रेतवह्नौ प्रेतकाष्ठे प्रेतमांसं सुपुत्रक[8] ।
जपेत्तत्रायुतं पुत्र रिपुर्गच्छेद्यमालये[9] ॥१९॥
स्नुह्या[10]क्षीरेण संयुक्तं 'मर्द्दयेत् श्वेतसर्षपैः'[11] ।
चतुरङ्गुलपुत्तल्यां लिखेत् पूर्वंवदाचरेत् ॥२०॥

'स्थापयेच्चुल्लचधोभागे'[12] यमघंटकयोगतः ।
तत्रोपरि दिवारात्रौ अग्निं संस्थाप्य बुद्धिमान् ॥२१॥[13]

बगलाबीजमध्यस्थं साध्यनाम च संलिखेत् ।
वेष्टयेद्वगलामन्त्रं ईशानादिशताक्षरम्[14] ॥२२॥

प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा तु संहारक्रमतोऽर्चयेत् ।
शताक्षर्यर्कक्षीरैस्तु स्नुहीक्षीरेण लेपयेत् ॥२३॥[15]

---

१. घ. समापयेत् । २. घ. नु । ३. क.ख.ग. ०वशे । ४. घ. वाथ । ५. घ. चितिभस्म । ९. ख. ग. घ.
६. घ. प्रेतान्नं । ७. घ. चतुरं पुत्तलीं चैव । ८. घ. च पुत्रक । १२. घ. ०चुल्ल्य० ।
०यमालयम् । १०. घ. स्नुही । ११. घ. श्वेतसर्षप मर्द्दयेत् ।
१३. ख. घ. पुस्तकस्थोऽयमंशो विशेषः—

अयुतं च दिवारात्रौ एकाक्षरमनुं जपेत्
मसूरिकाज्वराच्छत्रुः पक्षान्मरणमाप्नुयात् ॥
अर्कपत्रे लिखेन्नाम अर्कक्षीरेण बुद्धिमान् ।

१४. घ. ईशान्यादि० । १५. ख. ग. घ. पुस्तकेषु निम्नांशो विशेषः—

संतपेद्दीपशिखया पुत्तलीं तां विशेषतः ।
अष्टोत्तरशतं कृत्वा शताक्षर्यादि कल्पयेत् ॥

एवं कृते सप्तरात्रं स शत्रुश्च मृतो भवेत् ।
मसूरिकाजरासक्तः पश्चाद् गच्छेद् यमालयम् ॥२४॥
मन्त्रयेन्निम्बपत्रेण एकमेकं क्रमं क्रमम् ।
चन्द्रप्रसादमन्त्रेण शीतलाविद्यया तथा ॥२५॥[1] ॥

सपर्णां[2] क्षालयेत् क्षीरैः सदाहः शान्तिमाप्नुयात् ।[3]
तिक्तकोशातकीजातिः[4] तापिच्छी सादरं तथा ॥२६॥

धत्तूरकं च तन्मूर्द्ध्नि 'कारवेल्या फलाकृतिम्'[5] ।
'षट्मनःशिलाबीजैश्च'[6] कुर्यात् पादद्वयं तथा ॥२७॥

बदरीमूलतो गत्वा प्राणस्थापनकं चरेत् ।
मन्त्रमुच्चारयेत्पुत्र तदन्तः शत्रुमुच्चरेत् ॥२८॥[7]

श्रोत्रालीगण्डभ्रूमध्ये जिह्वानासास्यशेफसौ[8] ।
'दक्षिणाभिमुखो भूत्वा'[9] वगलासम्पुटद्वयम्[10] ॥२९॥

ब्रह्मस्थाने तालुदेशे कण्टकानर्कसंख्यया ।
'दक्षिणाभिमुखो भूत्वा'[11] रोपयेन्नग्नतस्तथा[12] ॥३०॥

पञ्च पञ्च करे रोप्य पार्श्वे कुक्षौ च पृष्ठके ।
कण्टकान् सप्तसंख्याकान् 'मन्त्रयेत् पूर्ववत् क्रमात्'[13] ॥३१॥

रोपयेत् पादयुग्मे तु प्रत्येकं[14] द्वादशं तथा ।
'मन्त्रपूर्वं च संरोप्य'[15] वदरीकण्टकांस्तथा ॥३२॥

पुत्तलीं प्रेतवस्त्रेण बद्ध्वा प्रादेशगर्भके[16] ।
श्मशानाग्नौ[17] क्षिपेद्[18] रात्रौ बलिं दद्याच्च कुक्कुंटम्[19] ॥३३॥

---

१. अतः परमयमंशोऽवलोक्यते घ. पुस्तके—
"एकाक्षरीविद्यया च शताक्षर्या च विद्यया" ।
२. सुपर्णान् । ३. घ. पुस्तस्के निम्नांशो दृश्यते
मंत्रितं जुहुयान्मंत्री क्षीरे वापि तथैव च ।
सप्ताहाच्छान्तिमाप्नोति तमः सूर्योदये तथा ॥
४. घ. जाती । ५. ख. कारवेल्य० । घ. कारवल्या० । ६. ख. ग. षट्शिलां निंबबीजैश्च । घ. षट्छितां निम्बपत्रैश्च । ७. घ. पुस्तके विशेषः पाठः—
कंटकान्तो(न्ता)पयेदकंनेत्राद्यंगेषु पुत्रक ।
८. घ. ०शेफसौः । ९. क. ग. घ. पुस्तकेषु नास्ति । १०. घ. पुस्तके नास्ति । ११. घ. दक्षिणाभिमुखं स्थित्वा । १२. घ. ०मग्नतो रवौ । १३. घ. रोपयेन्मन्त्रपूर्वकम् । १४. घ. द्वादश । १५. घ. मंत्रपूर्वान् समारोप्य । १६. घ. ०गर्त्तके । १७. घ. श्मशाने । १८. घ. निक्षिपेद् । १९. घ. कुक्कुटम् ।

अश्मयंदं[1] रिपोरङ्गे नाडीशूलं भवेद् ध्रुवम् ।
तेनैव दुःखितः शत्रुः पक्षाद् गच्छेद् यमालयम् ॥३४॥

वक्ष्येऽहं चोपसंहारं जीवस्थोऽपि रिपुं[2](पुर्) यथा[3]।
रवौ रात्रौ बलिं दत्वा[4] चानीत्वा[5] साधकोत्तमः ॥३५॥

उत्पाट्य कण्टकान्यादौ[6] क्षीरेण क्षालयेत् सुत ।
तच्छलाकां[7] च[8] संक्षाल्य निःक्षिपेत् कूपमध्यगे ॥३६॥

निःक्षिपेन् मन्त्रपूर्वं च एकैकं चोत्तरामुखः[9] ।
शल्वकेनैव[10] मन्त्रेण मन्त्रयेत् कलशोदकम् ॥३७॥

सहस्रवारं विधिवन्[11] मंत्रेण[12] वारिभिः क्रमात् ।
प्रयोगं[13] पीडितं[14] तेन मार्जयेच्छाम्भवेन[15] तु ॥३८॥

स्थापयेत्[16] तेन मंत्रेण मन्त्रसिद्धिस्तु पुत्रक ।
ताम्रपात्रे नदीतोये[17] नदीवेगाग्रवेष्टितः[18] ॥३९॥

'तस्मिंश्च मन्त्रयेत् साध्यं मन्त्रैणैव शतं तथा'[19] ।
त्रिकालं प्राशयेत्तोयं मध्याह्ने मार्जनं तथा ॥४०॥

त्रिदिनं चाथवा पञ्च ऋषिसंख्यादिनेषु च[20] [21] ।
एवं कृते पीडितस्य[22] 'पीडां सूर्योदये यथा'[23] ॥४१॥

'संहरेच्छान्तिमाप्नोति तमः सूर्योदये यथा'[24] ।
न ज्ञात्वा चोपसंहारं यः करोति नराधमः ॥४२॥

स जीवन्नेव चाण्डालो मृतः श्वानो भविष्यति[25] ।
प्रयोगं चोपसंहारमभ्यसेच्च कुमारक ॥४३॥

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे एकोनविंशः[26] पटलः ॥१९॥

---

१. ख. अश्मर्षदं । घ. अर्चयेत्तं । २. घ. रिपु । ३. घ. यदा । ४. घ. दद्या । ४. घ. तलालटं तु । ४. ५. ख. नीत्वा सा । घ. दानीतं । ६. घ. कण्टकान् सर्वा । ७-८. घ. तलालटं तु । ९. घ. चोत्तरं मुखम् । १०. ख. ग. शांभवेनैव । घ. शालुवेशेन । ११. विधिना । १२. घ. मंत्रितं । १३. ख. घ. प्रयोग । १४. घ. मुदितं । १५. घ. शालुवेन । १६. घ. तर्पयेत् । १७. घ. तोयं । १८. घ. नदीवेगान्निवेशितम् । १९. घ. मंत्रयेत् शल्य-मंत्रेण शतवारं सहस्रकम् । २०. घ. वा । २१. घ. पुस्तके विशेषः पाठः—

देवता शान्तिमाप्नोति तमः सूर्योदये यथा

२२. घ. तस्य पीडा । २३. घ. शान्तिमाप्नोति निश्चितम् । २४. घ. पुस्तके नास्ति । २५. घ. भिजायते । २६. घ. एकोनविंशतिमं ।

॥ अथः विंशः पटलः ॥

सर्वावयवशोभाढ्यां[1] समपीनपयोधराम् ।
हृदि संभावये[2] देवीं वगलां सर्वसिद्धिदाम् ॥१॥

स्कन्द[3] उवाच—

नमस्ते पार्वतीनाथ नमः पन्नगभूषण ।
परविद्याभेदनं च वगलायाश्च मे वद ॥२॥

ईश्वर उवाच

मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि मन्त्रसंभेदनाविधिम् ।
प्रयोगं चोपसंहारं शृणु सर्वं कुमारक ॥३॥

उद्धरेत्तारमादौ तु स्तब्धमायां ततः परम् ।
श्रीर्मायां शक्तिवाराहं 'वाग्भवं मन्मथं तथा'[4] ॥४॥

विलिखेत्तार्क्ष्यबीजं[5] च वगलामुखी[6] समुच्चरेत् ।[7]
परप्रयोगमुच्चार्यं ग्रसयुग्मं 'ततः परम्'[8] ॥५॥

पूर्ववन्नवबीजं च ब्रह्मास्त्रपदमुच्चरेत् ।
रूपिणीपदमुच्चार्य परविद्यापदं[9] वदेत् ॥६॥

ग्रसनीति[10] पदं चोक्त्वा भक्षद्वितयमुच्चरेत्[11] ।
पूर्ववन्नवबीजं च परप्रज्ञापदं वदेत् ॥७॥

हारिणीति पदं चोक्त्वा 'प्रज्ञाख्यातियुगं वदेत्'[12] ।
पूर्ववन्नवबीजं च स्तम्भनास्त्रपदं वदेत् ॥८॥

रूपिणीपदमुच्चार्य बुद्धि 'वाचायुगं वदेत्'[13] ।
पञ्चेन्द्रियपदं चोक्त्वा ज्ञानं भक्षद्वयं वदेत् ॥९॥

पूर्ववन्नवबीजं च बगलामुखि उच्चरेत् ।
हुँ फट् स्वाहा'समायुक्तं वगलामंत्रमुत्तमम्'[14] ॥१०॥

शतोत्तारं मंत्रबीजमष्टाविंशतिरेव च ।[15]
ब्रह्मा ऋषिश्च छन्दोऽस्य गायत्री समुदाहृता ॥११॥

---

१. घ. ०शोभाढ्यां । २. क. संभावयवे । ३. घ. क्रौञ्चभेदन । ४. घ. वाराहं वाग्भवं स्मर । ५. घ. संलिखे० । ६. ०मुखि । ७. घ. वोच्चरेत् । ८. घ. ततोच्चरेत् । ९. घ. ०परं । १०. घ. गसतीति । ११. घ. भक्षयद्वय० । १२. घ. प्रज्ञां भ्रंशययुग्मकम् । १३. घ. विनाशययुग्मकम् । १४. घ. श्वाक्षिचंद्रवर्णाढ्यं मंत्रमुत्तमम् । १५. पदद्वयमिदं नास्ति घ. पुस्तके ।

परविद्याभक्षणी च वगला देवता स्वयम् ।
अत्र प्रयोगं वक्ष्यामि मंत्रस्यास्य कुमारक ॥१२॥

पाशाङ्कुशेनान्तरितः शक्तिबीजेन[1] विन्यसेत् ।
'तत्तद्वागीश्वरीबीजैस्तद्वच्छ्रींबीजतो न्यसेत्'[2] ॥१३॥

लघुषोढां च विन्यस्य क्रमादेव कुलेश्वरी ।
ध्यानं यत्नात् प्रवक्ष्यामि क्रौञ्चभेदनकोविद ॥१४॥

सर्वमन्त्रमयीं देवीं सर्वाकर्षणकारिणीम् ।
सर्वविद्याभक्षणीं[3] च भजेऽहं विधिपूर्वकम् ॥१५॥

एवं ध्यात्वा जपेन्मंत्रं लक्षमेकं क्षपाशनः ।
तर्पयेदासवेनैव तद्दशांशं कुमारक ॥१६॥

छागमांसेन जुहुयात् मध्वाज्येन[4] समन्वितम् ।
खण्डमामलकप्रख्यमयुतं[5] च कुमारक ॥१७॥

योगिनीं वीरपूजां च ह्याचरेच्च समादरात् ।
मंत्रसिद्धिर्भवेत्तत्र नात्र कार्या विचारणा ॥१८॥

परप्रयोगकालेषु[6] मन्त्रमेतं[7] कुमारक ।
'सहस्रत्रितयं जप्त्वा'[8] स शत्रुरवशिष्यते ॥१९॥

शत्रवश्च पुरश्चर्यां यत्र कुर्वन्ति पुत्रक[9] ।
तत्रायुतं जपं कुर्यात् तत्र विघ्नं प्रजायते ॥२०॥

यत्र कुत्रापि रिपवस्तपः कुर्वन्ति निश्चलात् ।
तत्रायुतं जपेन्मंत्रं ग्रसते[10] परविद्यया[11] ॥२१॥

अयुतं तस्य मन्त्रन्तु[12] अभिमन्त्र्य[13] फलं भवेत् ।
द्रव्याभिमानिनो ये च ये च विद्याभिमानिनः ॥२२॥

रूपाभिमानिनो ये च 'ये च'[14] यौवनमानिनः ।
यत्र कुत्रापि तिष्ठंति मंत्रमेतं कुमारक ॥२३॥

---

१. घ. शक्तिबीजं च । २. घ.
ततो नागीश्वरी तद्वच्छ्रीबीजं च ततो न्यसेत् ।
३. ०क्ष. घ. भक्षिणीं । ४. घ. माध्वाज्येन । ५. घ. ०प्रस्थमयुतं । ६. घ. तु ।
७. घ. ०मेनं । ८. घ. सहस्रत्रितयान् पुत्र । ९. फ. ग. निपुत्रक । १०. घ. ग्रस्ते ।
११. घ. रिपुविद्यया । १२. घ. मंत्रस्य । १३. घ. अग्निमंत्र्य । १४. घ. नास्ति ।

परविद्याभक्षणाख्यं[1] मंत्रं चैवायुतं जपेत् ।
श्वेतकेशान्[2] समायांति दन्तशून्यो भवेद्रिपुः ॥२४॥

सद्यो यौवनहीनं[3] तु[4] 'तमः सूर्योदयं यथा'[5] ।
रूपवान् व्रणयोगी च भवत्येव न संशयः ॥२५॥

जात्याभिमानिनो ये च 'निन्दको भवति ध्रुवम्'[6] ।
'तपोऽभिमानिनो ये च'[7] अङ्गहीनो विजायते[8] ॥२६॥

वैदिकं च परित्यज्य विपरीतकृतं[9] भवेत् ।
विद्याभिमानिनः सर्वेऽप्ययुतं[10] जपमाचरेत्[11] ॥२७॥

भवेद्विद्याविहीनोऽपि मुष्करो[12] भवति ध्रुवम् ।
देहाभिमानी पुरुषो नष्टदेहो भवेद् ध्रुवम् ॥२८॥[13]

दौर्भाग्येन समायुक्तः[14] सर्वं सम्मोहनं भवेत् ।
एतन्मंत्रस्य माहात्म्यं न जानन्ति ऋषीश्वराः ॥२९॥

'सर्वे स्वं'[15] देहजं मह्यं[16] स्वप्रभावात्[17] प्रकाशिनी ।
योगाभ्यासो[18] योगसिद्धो[19] तपस्वी सत्यवादिनः ॥३०॥

मंत्रेण[20] सिद्धोऽसिद्धोऽपि यत्र प्रत्येति[21] पुत्रक ।
परविद्याभेदनं च मंत्रोपासनतत्परः ॥३१॥

यत्र गत्वा समासीन एतन्मन्त्रायुतं जपेत् ।
'योगसिद्धो मंत्रसिद्धस्तपस्वी शतजीविनः'(तः)[22] ॥३२॥
महाक्रान्तो[23] भवेन्नो चेन्निन्दकोऽपि भवेद् ध्रुवम् ।
ये ये[24] तन्मन्त्रराजं च नित्यमष्टोत्तरं जपेत् ॥३३॥
'एतद्राज्यं स मासेन'[25] अम्बासेवापरो[26] भवेत् ।
न तत्समधिको[27] भूयान्नैव द्वेषकरो भवेत् ॥३४॥

---

१. घ. ०भक्षणार्थं । २. घ. श्वेतकेशाः । ३. घ. ०हीनः । ४. घ. च । ५. घ. भवत्येव न संशयः । ६. घ. पुस्तके नास्ति । ७. घ. नास्ति । ८. घ. पि जायते । ९. घ. विपरीतक्रमो । १०. घ. सर्वं प्ययुताज् । ११. घ. जपमासुतं । १२. ख. घ. सूकरो । १३. ख. घ. पुस्तकस्थः पाठोऽयं विशेषः—

द्रव्याभिमानी पुरुषो नष्टद्रव्यो भवेद् ध्रुवम् ।

१४. घ. समायुक्तं । १५. ख. सर्वस्वं । १६. घ. मोहं । १७. घ. स्वप्रकाशात् । १८. घ. योगाभ्यासे । १९. घ. योगसिद्धिः । २०. घ. यंत्रेण । २१. घ. तिष्ठति । २२. घ. योगसिद्धस्तपस्वी च मंत्रसिद्धः समीपतः । २३. ख. ग. मदाक्रान्तो । घ. पापाक्रान्तो । २४. घ. ए । २५. घ. तद्राज्यं च जनाः सर्वे । २६. घ. वश्याः सेवा० । २७. घ. ०समाधिको ।

नैव निन्दाकरो भूयाद् 'यदीच्छेद्ये च(च्चेत्स्व)जीवितम्'[1] ॥

॥ इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे विंशतिः[2] पटलः ॥२०॥

॥ अथैकविंशः पटलः ॥

परप्रज्ञोपसंहारीं[3] परगर्वप्रभेदिनीम्[4]।[5]
परविद्याकर्षणं[6] च प्रयोगं वद शङ्कर ॥१॥

ईश्वर उवाच—

विश्वमेतद्भक्तिमयं[7] 'सा भक्तिर्वगलामया'[8] ।
'एतच्च भासमानां'[9] तां वगलां च कुमारक ॥२॥

वाङ्मयं चैव वैचित्र्यं त्रिषु लोकेषु वर्त्तते ।
तद्गर्वहरणार्थं च विद्यामेतां कुमारक ॥३॥

मनसा 'तं जपन्मन्त्रं'[10] मुखं तस्यावलोकयेत् ।
भयं च विस्मृतिर्भ्रान्तिस्तत्क्षणाद् भवति ध्रुवम् ॥४॥

पानपात्रं वैरिजिह्वां गदां शूलेन संयुताम् ।
पीतवर्णां मदाघूर्णां चिन्तयेदाननं रिपोः ॥५॥

स तु भाषापतिः साक्षाद् बृहस्पतिरिव स्वयम् ।
'स तु जात्यंतरो,'[11] भूत्वा निन्दितो भवति ध्रुवम् ॥६॥

अस्त्रशस्त्रमयं मन्त्रं यो जानाति कुमारक ।
तत्र गत्वा महामन्त्रं जपेद्देवीमनन्यधीः[12] ॥७॥

त्रिसहस्रं ध्यानयुक्तं तस्य विद्या कुमारक ।
विस्मृतिश्च भवेच्छीघ्रं नात्र कार्या विचारणा ॥८॥
अत्यन्तैश्वर्य्यसंयुक्तो[13] द्विषता[14] वर्त्तते[15] यदि ।
तस्य गेहे[16] भौमवारे निशि नग्नेन बुद्धिमान् ॥९॥

---

१. घ. यदीच्छेज्जीवनं भुवि । २. घ. परविद्याप्रयोगन्नाम विंशतिः। ३. घ. प्रज्ञापहरणी । ४. घ. ०प्रभेदनी । ५. ख. ग. घ. पुस्तकेषु निम्नांशो विशेषः—

परविद्याभक्षिणीं तां बगलां हृदि भावयेत् ।

स्कंद (घ. क्रौञ्चभेदन) उवाच ॥

नमस्ते योगिसंसेव्य योगिराज नमो नमः ।

६. घ. ०कर्षणीं च । ७. घ. ०च्छक्तिमयं । ८. घ. तच्छक्तिर्वगलाह्वया । ९. ख. एतत्प्रभासमानां । घ. एकत्र भासमानां । १०. घ. च जपेन्मंत्रं । ११. घ. सद्यो जाड्यतमो । १२. घ. जपेद्भूवि० । १३. घ. ०संयुक्तं । १४. ख. द्विषितो । घ. द्विषतो । १५. घ. वर्त्तये । १६. घ. गेहं ।

प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा दिशि कौबेरदिङ्मुखः ।
सहस्रं सप्तरात्रौ[1] च नष्टद्रव्यो भवेद् ध्रुवम् ॥१०॥
ग्रामं वा नगरं वाथ नित्यं कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
जपेदयुतसंख्या तु[2] तद्ग्रामं तु[3] कुमारक ॥११॥
सस्यादिभिर्विनश्यन्ति द्रव्यं[4] चौरेण नश्यति ।
पशुभिर्म्रियते पुत्र मासाद्दौर्भाग्यमाप्नुयात् ॥१२॥
फलितं पुष्पितं चैव[5] शत्रोरारामर्माश्रितः ।
रवौ रात्रौ निशाकाले नग्नो भूत्वा सुनिश्चयः[6] ॥१३॥
प्रदक्षिणत्रयं कृत्वाप्ययुतं जपमाचरेत् ।
वृक्षो निर्मूलमाप्नोति शिवस्य वचनं यथा ॥१४॥
एकाक्षरीं च बगलां साध्याख्यं[7] मध्यदेशतः ।
चिन्तयेज्जाप्यकालेषु[8] सहस्रं जपमाप्नुयात्[9] ॥१५॥
लक्षं जप्त्वा मनोरेवं मृत्तिकां च कुमारक ।
प्रवाहोपरि निःक्षिप्य नद्या उपरि बुद्धिमान् ॥१६॥
स्तम्भयेत्तं नदीवेगं महदाश्चर्यकारणम् ।
महानद्यामेवमेव कुर्यात्तं[10] गुरुलाघवान्[11] ॥१७॥
व्यालव्याघ्रादयश्चैव ये ये क्रूरमृगादयः ।
त्रिसप्तमन्त्रितं भस्म मूर्द्धनि क्षेपणमात्रतः ॥१८॥
वाक्पाणिवदनाक्ष्णां च[12] तत्क्षणात् स्तम्भनं भवेत् ।
मन्त्रयेत् संस्कृतं भस्म मन्त्रेणानेन पुत्रक ॥१९॥
अष्टोत्तरशतं सम्यक् ध्यानमात्रेण[13] बुद्धिमान् ।
सर्वाङ्गोद्धूलनं कुर्यात् तद्भस्मना[14] कुमारक ॥२०॥
वनेचरास्तामसजन्तवश्च चौराग्निदुष्कर्मकृदल्पहानपि[15] ।
प्रेताश्च[16] भूताश्च[17] पिशाचभूचराः[18] सिंहाश्च संस्तंभयति ध्रुवं च[19] ॥२१॥

१. घ. सप्तरात्रं । ग. सदा रात्री । २. ख. घ. क । ३. घ. च । ४. घ. घनं । ५. घ. ०चापि । ६. घ. शु निश्चितम् । ७. ख. ससाध्वं । घ. साध्यास्व । ८. घ. ०काल तु । ९. ख. घ. ०जपमाचरेत् । १०. घ. कुर्यातद् । ११. घ. ०लाघवात् । १२. घ. ध्रि । १३. घ. ध्यानपूर्वं सु । १४. ख. तद्भस्मेन । १५. घ. चौरादि- दुष्कर्मकरा नराश्च । १६. घ. प्रेतांश्च । १७. भूतानपि । १८. भूचरांश्च । १९. क. ख. ग. च ध्रुवम् ।

एतन्मन्त्रवरं पुत्र मनसा जपमाचरेत् ।
वादार्थं चाथ वाणिज्यं सभायां राजसन्निधौ ॥२२॥
गत्वा तु रिपवः सर्वे जिह्वास्तंभनमाप्नुयात् ।
'शत्रुमुद्दिश्य मन्त्रं च अयुतं प्रजपेत्ततः'[1] ॥२३॥
पक्षमात्राद् भवेच्छत्रोर्जिह्वास्तंभनमाप्नुयात् ।
तेनैव म्रियते शत्रुर्मण्डलार्धेन[2] मानवः ॥२४॥
दक्षिणामूर्त्तिमन्त्रेण मन्त्रितं जलमादरात् ।
त्रिकालं चैव पीत्वा तु मण्डलाच्छान्तिमाप्नुयात् ॥२५॥

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे एकविंशतिः[3] पटलः ॥२१॥

॥ अथ द्वाविंशः पटलः ॥

नमस्ते देवदेवेशीं जिह्वास्तम्भनकारिणीम् ।
पानपात्रगदायुक्तां भजेऽहं वगलामुखीम्[4] ॥१॥

स्कन्द[5] उवाच—

त्रिपुरारे त्रिलोकज्ञस्त्रिकालात्मं[6]स्त्रियंबक ।
वगलास्त्रं वदास्माकं 'मयि वात्सल्यगौरवात्'[7] ॥२॥

शिव[8] उवाच—

वगलास्त्रमिदं पुत्र[9] सुरासुरसुपूजितम् ।
अगस्त्यः प्रोक्तवान् पूर्वं रामं दाशरथिं प्रति ॥३॥
तेनोक्तमाञ्जनेयाय तेनोक्तं चार्जुनं प्रति ।
तद्विद्यां च प्रवक्ष्यामि वगलाहृदयं[10] मनुम्[11] ॥४॥
प्रथमं वगलाबीजं वाराहं तदनन्तरम्[12] ।
'मम शत्रूंस्ततः शक्ति'[13] वगलाबीजमुद्धरेत् ॥५॥
वगलामुखिपदं चोक्त्वा 'वाचं मुखं'[14] पदं वदेत् ।
ग्रसद्वयं[15] च उच्चार्य खाफीयुग्मं[16] ततः परम् ॥६॥

---

१. घ.—'प्राप्नुयाच्छत्रुमुद्दिश्य तन्मंत्रं प्रजपेत्ततः' । २. क. ०मंडलार्धेन । ३. घ. परविद्याकर्षणं नाम एकविंशतिः । ४. घ. बगलाम्बिकाम् । ५. घ. क्रौंचभेदन । ६. घ. ०कालज्ञ । ७. घ. मानवात्सल्यगौरवात् । ८. घ. ईश्वर । ९. घ. मंत्रं । १०. घ. बगलास्त्रमिदं । ११. घ. मनु । १२. घ. च ततः परम् । १३. घ. ततश्च शक्तिवाराहं । १४. घ. मम शत्रु । १५. ख. ग्रहयुग्मं । १६. घ. खाहियुग्मं ।

भक्षयुग्मं ततोच्चार्य शोणितं पिब-युग्मकम् ।
वगलामुखि[1] उच्चार्य[2] वगलाबीजमुच्चरेत्[3] ॥७॥
'शक्ति वाराहमुच्चार्य वर्मास्त्रं च समुद्धरेत्'[4] ।
'त्रिचत्वारिंशद्वर्णयुक्तं'[5] वगलायाः[6] सुपावनम् ॥८॥
दुर्वासा[7] ऋषिरेवात्र[8] छन्दोऽनुष्टुप् भवेच्छुभम्[9] ।
देवता वगलानाम्नी[10] जगद्व्यापकरूपिणी ॥९॥
ग्लौं[11] बीजं ह्रीं च शक्तिश्च फट्कारं कीलकं तथा ।
'मंत्रराजेन देव्याश्च'[12] न्यासविद्यां समाचरेत् ॥१०॥
ध्यानभेदं[13] प्रवक्ष्यामि मन्त्रभेदेन पुत्रक ।
चतुर्भुजां त्रिनयनां पीनोन्नतपयोधराम् ॥११॥
जिह्वां खड्गं पानपात्रं गदां धारयन्तीं पराम्[14] ।
पीताम्बरधरां देवीं पीतपुष्पैरलङ्कृताम् ॥१२॥
बिम्बोष्ठीं चारुवदनां मदाघूर्णितलोचनाम् ।
सर्वविद्याकर्षिणीं च सर्वप्रज्ञापहारिणीम् ॥१३॥
भजेऽहं चास्त्रवगलां सर्वाकर्षणकर्मसु ।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं बाणलक्षं कुमारक ॥१४॥
तर्प्पयेत्तद्दशांशं च जपासंमिश्रवारिणा[15] ।
तद्दशांशं हुनेत् पुत्र तालकं चाज्यसंयुतम्[16] ॥१५॥
भगाकारे सुकुण्डेऽस्मिन्[17] मुद्रया हंस[18] बुद्धिमान् ।
वदरीफलमात्रं च ग्राहुतीश्च कुमारक ॥१६॥
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात् सहस्रं शतमेव च ।
योगिनीं पूजयेत् पुत्र द्रव्यशुद्धिसमन्विताम् ॥१७॥
मन्त्रसिद्धिर्भवेत् सद्यो[19] देवता च प्रसीदति ।
शिवालये जपेन्मंत्रमयुतं च सुबुद्धिमान् ॥१८॥

---

१. घ. बगलामुखी । २. घ. समुच्चार्य । ३. घ. तद्बीजं च पुनर्वदेत् । ४. 'ततश्च शक्तिवाराहं वाराहं च समुच्चरेत्' । ५. घ. त्रयश्चत्वारिंशद्वर्णं । ६. घ. बगलास्त्रं । ७. घ. दूर्वासो । ८. घ. ०रेवास्य । ९. घ. एव च । १०. घ. ग्रास्त्रवगला ११. घ. ह्लौं । १२. मंत्रराजवदेवात्र । १३. घ. ध्यानं यत्नात् । १४. घ. शिवाम् । १५. घ. हेतुः संमिश्र० । १६. घ. चाल्पसंयुतम् । १७. घ. तु कुण्डे० । १८. ख. हंसीमुद्रेण । घ. हंसमुद्रेण । १९. घ. सत्यं ।

शत्रुक्षयं भवेत् सद्यो नान्यथा शिवभाषितम् ।
षट्सहस्रं जपेन्मन्त्रं निशायां चण्डिकालये ॥१९॥

जिह्वास्तम्भनमाप्नोति बृहस्पतिसमोऽपि वा ।
'जपित्वा च'[1] सहस्रं तु भैरवस्य च सन्निधौ ।२०॥

बुद्धिभ्रंशो भवेत् सद्यो वाणीपतिसमोऽपि वा ।
वीरभद्रालये पुत्र अयुतं जपमाचरेत् ॥२१॥

सिद्धिदो जायते वत्स नान्यथा शिवभाषणम् ।[2]
मातृकासन्निधौ मंत्री जपेद् दशसहस्रकम्[3] ॥२२॥

सद्यः स्तम्भनमाप्नोति वाल्मीकिसदृशोऽपि वा ।
ध्यानपूर्वं[4] जपेन्मन्त्री[5] अयुतं च कुमारक ॥२३॥

रूपंयौवनवाञ्छत्रुर्व्याधिमान्[6] भवति ध्रुवम् ।
त्रिसहस्रं[7] जपेन्मन्त्रं[8] त्रिसहस्रं दिने दिने ॥२४।

मण्डलाच्छत्रुसम्मोहं[9] कुबेरसदृशोऽपि च ।
ऐश्वर्यं नाशमाप्नोति कुबेरसदृशोऽपि वा ॥२५॥

त्रिकालमयुतं जप्त्वा ध्यानपूर्वं सुबुद्धिमान् ।
वगलाध्यानतो मन्त्रमयुतं जपमाचरेत् ॥२६॥

सर्वाङ्गं[10] वायुना शत्रुः शीघ्रं गच्छेद् यमालयम्[11] ।
पार्वतीसन्निधौ मंत्री जपेदयुतमादिशन्[12] ॥२७॥

रात्रौ पूजासमायुक्तो नग्नो दक्षिणदिङ्मुखः ।
अन्धो भवति तच्छत्रुरवश्यं[13] क्रौञ्चभेदन ॥२८॥

विघ्नराजं समभ्यर्च्य रवौ[14] तु जपमाचरेत् ।
त्रिसहस्रं जपेन्मन्त्रं कुक्षिरोगी भवेद्रिपुः ॥२९॥

मण्डलान्नाशमायाति नात्र कार्या विचारणा ।
प्रयोगान्ते च संस्कारं पूजाकाले समाचरेत् ॥३०॥

इति श्रीषड्विद्यागमे सांख्यायनतंत्रे द्वाविंशतिः पटलः ॥

---

१. ख. जपित्वाष्ट । घ. जपेत्पंच । २. घ. निर्वीर्यो जायते शत्रुर्नान्यथा शिवभाषितम् । ३. घ. अष्टसहस्रकम् । ४. घ. ध्यानात् पूर्वं । ५. घ. जपेन्मंत्रं । ६. क. ग. घ. ०र्व्याधितो । ७. ख. त्रिसंध्यं । घ. त्रिसंध्यं च । ८. ख. जपते मंत्रं । ९. क. ग. घ. शत्रुसमूहं । १०. ख. घ. सर्वाङ्ग । ११. घ. यमालये । १२. घ. ०दयुतसंख्यया । १३. घ. तच्छत्रोर्मण्डला [त्] । १४. घ. रात्रौ ।

।। अथ त्रयोविंशः पटलः ।।

स्वर्णसिंहासनासीनां सुन्दराङ्गीं शुचिस्मिताम् ।
बिम्बोष्ठीं चारुनयनां ध्यायेत् पीनपयोधराम् ।।१।।

स्कन्द[1] उवाच—

नमस्ताण्डवरुद्राय तापत्रयहराय च ।
वगलास्त्रमहामन्त्रैः प्रयोगान् वद शङ्कर ।।२।।

शिव[2] उवाच—

त्रिकालं तु समासीनो ध्यानपूर्वं तु[3] साधकः ।
त्रिसप्त मन्त्रयित्वा तु जपं पश्चात् समाचरेत् ।।३।।
नित्यं च त्रिसहस्रं तु षण्मासं विजितेन्द्रियः ।
वाचासिद्धिर्भवेत्तस्य शापानुग्रहकारका[4] ।।४।।
अश्वत्थमूले प्रजपेदयुतं ध्यानपूर्वकम् ।
भक्षणाद् व्याधिनाशं च भवेदेवं न संशयः ।।५।।
विभीतकतरोर्मूले अयुतं जपमाचरेत् ।
जिह्वास्तम्भनमाप्नोति साक्षाद्वागीश्वरोऽपिवा ।।६।।
कपित्थवृक्षमूले[5] तु प्रजपेदयुतं तथा ।
श्रोत्रस्तम्भनमाप्नोति सद्यो बधिरतां व्रजेत् ।।७।।
पिचुमंदतरोर्मूलेऽप्ययुतं जपमाचरेत् ।
प्राणस्तम्भनमाप्नोति[7] रोगी पीनसवान् भवेत् ।।८।।
कदलीमूलमाश्रित्य अयुतं जपमाचरेत् ।
पादस्तम्भो भवेत् सद्यो वातरोगी भवेद् रिपुः[8] ।।९।।
करञ्जमूलमाश्रित्याप्ययुतं जपमाचरेत् ।
स्तम्भयेज्जठराग्निस्तु अन्नद्वेषो भवेद् ध्रुवम् ।।१०।।
विषतिन्दुकमूलं च समाश्रित्य मनुं जपेत् ।
अयुताच्च[9] भवेत् पुत्र गात्रस्तम्भनमाप्नुयात् ।।११।।
नद्यां समुद्रगामिन्यां नाभिदघ्नजले[10] स्थितः[11] ।
तर्पयेद् वगलास्त्रेण ग्रस्तं कृत्वारिनाम[12] च ।।१२।।

---

१. घ. क्रौञ्चभेदन । २. घ. ईश्वर । ३. घ. सु । ४. घ. त्रिसहस्रं । ५. क. ख. ग. ०कारकम् । ६. घ. कपित्थतरु० । ७. घ. घ्राणस्तं० । ८. घ. नरः । ९. घ. नाभिमात्रे जले । १०. घ. नरः । ११. घ. तद्वैरिनाम ।

दिने दिने सहस्रैकं वगलाध्यानपूर्वकम् ।
गर्भस्रावं भवेत्तस्य भार्याया:[1] शिवभाषितम् ॥१३॥[2]

वल्लीपलाशमूले तु जपेदयुतसंख्यया ।
मन्त्रमध्ये रिपोर्भार्यां ग्रस्तं कृत्वा कुमारक ॥१४॥

तर्पणं च दिवा कृत्वा रात्रौ रात्रौ[3] जपेन्मनुम् ।
सापि वन्ध्या भवेत् सत्यं नात्र कार्या विचारणा ॥१५॥

श्मशाने प्रजपेन्मन्त्रं ग्रस्तं कृत्वा तु पूर्ववत् ।
सद्यस्तद्भार्यानाशं च भवेदेवं न संशयः ॥१६॥

शून्यागारे जपेदेवमयुतं[4] ध्यानपूर्वकम् ।
लक्ष्मीर्नाशयते नूनं[5] स शत्रुरवशिष्यते ॥१७॥

जंबीरतरुमूले तु अयुतं जपमाचरेत् ।
[6]भ्रमाकुलकुलं सर्वं मण्डलान्नाशमाप्नुयात् ॥१८॥

शतवारं मन्त्रितं च शर्करोदकमेव च[7] ।
रिपूणां चैव दातव्यं जिह्वास्तम्भनमाप्नुयात् ॥१९॥

[illegible] तं मन्त्रितं चैव नारिकेलफलोदकैः ।
पाययेद्रात्रि[8]रिपुभिर्जिह्वास्तंभनमाप्नुयात् ॥२०॥

नागवल्लीदलं चैव क्रमुकं चूर्णमेव च ।
सहस्रं मन्त्रितं पुत्र दातव्यं शत्रु(त्रू)णां निशि ॥२१॥

ताम्बूलचर्वणाच्छत्रुर्जिह्वास्तंभनमाप्नुयात् ।
चन्दनं चैव कस्तूरीघर्षितं मन्त्रयेत् सुत ॥२२॥

पुनश्च मन्त्रयेत्ताम्रपात्रे गुणसहस्रकम् ।
तच्चन्दनलेपनेन[9] रिपुर्भ्रान्तो[10] भविष्यति ॥२३॥

दन्तधावनकाष्ठं च मन्त्रयेत् त्रिसहस्रकम् ।
तत्काष्ठेन रिपोः[11] पुत्र दन्तधावनमात्रतः ॥२४॥

---

१. क. ग. घ. नार्यायाः । २. घ. पुस्तकेऽयं पाठो विशेषः—

तत्तो(तः) पलाशमूले तु प्रजपेच्च परे द्वयम् ।

३. घ. रात्रौ तु प्र । ४. घ. जपेन्मंत्र० । ५. घ. शीघ्रं । ६. ७. घ. पुस्तके नास्ति ।
८. घ. प्राशयेद्वारि । ९. घ. ०विलेपेन । १०. घ. परिभ्रान्तो । ११. घ. रिपुः ।

जिह्वां वाणीं च बुद्धिं च 'मनः पादादिकं'[१] तथा ।
स्तम्भनं च भवेच्छीघ्रं शिवस्य वचनं यथा ॥२५॥

प्रेतवस्त्रं रवौ ग्राह्यं चितिकाष्ठं च वेष्टयेत् ।[२]
श्मशाने निखनेद् रात्रौ त्रिसहस्रं जपेत्तदा[३] ॥२६॥

शेषभाषापतिः साक्षाद् बृहस्पतिरपि स्वयम् ।
जिह्वास्तम्भनमाप्नोति सद्यो मूकत्वमाप्नुयात् ॥२७॥

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे त्रयोविंशतिः[४] पटलः ॥२३॥

॥ अथ चतुर्विंशः पटलः ॥

अम्बां पीताम्बराढ्यामरुणकुसुमगन्धानुलेपां त्रिनेत्रां,
गम्भीरां कम्बुकण्ठीं कठिनकुचयुगां चारुबिम्बाधरोष्ठीम् ।
शत्रोर्ज्जिह्वासिपत्रं[५] शरधनुसहितां व्यक्तगर्वाधिरूढां[६],
देवीं संस्तम्भरूपां सुविरलरसनामम्बिकां[७] तां भजामि[८] ॥१॥

स्कन्द[९] उवाच—

नमस्ते वृषभारूढ नमः पन्नगकङ्कण[१०] ।
लक्षण वद मे देव वगलामन्त्रमालिका[११] ॥२॥

ईश्वर उवाच

भृगुवारे च संगृह्य[१२] 'आरामस्थनिशां तथा'[१३] ।
'तां शुष्कां'[१४] सप्तरात्रं तु 'कृत्वा मेतामनन्तरम्'[१५] ॥३॥

भूताविपरितं[१६] चैव कपिलागोमयं तथा ।
पुनरेकान्तराद्ग्राह्यं[१७] भाण्डमध्ये तु निःक्षिपेत् ॥४॥

सविषं जलसंयुक्तं कुर्यान्मेलनमेव च ।
हरिद्रां तत्र निःक्षिप्य पूजयेदाशु तत्क्रमात् ॥५॥

चुल्ह्योपरि च तद्भाण्डं रवौ रात्रौ च निःक्षिपेत् ।
द्विगुणं जलसंयुक्तं[१८] कुर्यान्मेलनमेव च ॥६॥

---

१. घ. क्षुत्पिपासामलं । २. घ. पुस्तकस्थोऽयं पाठो विशेषो दृश्यते—
प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा तु पूजां चैव तु कारयेत् ।
३. घ. जपेन्मनुम् । ४. घ. बगलास्त्रविवरणं नाम त्रयोविंशतिः । ५. घ. ०सिपत्रां । ६. घ. शुक्लगरवादिरूढां । ७. घ. सुविरलवसना० । ८. घ. नमामि । ९. घ. क्रौञ्चभेदन । १०. ०भूषण । ११. ०जपमालिकाम् । १२. घ. संग्राह्य । १३. घ. आरामस्वासिशां निशि १४. ख. छायाशुष्कां । घ. छायाभुक । १५. घ. कृत्वा तु तदनन्तरम् । १६. ख. भूमावपतितं । घ. भूमा(मौ) तु पतितं । १७. ख. पुनरेका कराद् ग्राह्यं । घ. पुनरेकातशाद्ग्राह्यं । १८. घ. जपसंयुक्तं ।

अश्वत्थैरिन्धनैरेव ज्वालां 'कृत्वा सुबुद्धिमान्'[1] ।
तस्यां[2] मृदु भवेत्तावत्पचनं सम्यगाचरेत् ॥७॥
गोमयस्थां[3] हरिद्रां च क्षालयेद्वारिणा[4] ततः ।
छायाशुष्कं च कर्त्तव्यं हरिद्रामणिमादरात् ॥८॥
तेन कुर्यान्मालिकां च अष्टोत्तरशतं तथा ।
पुण्यस्त्रीनिर्मितं[5] सूत्रं[6] 'मंत्रैः संच्छेदयेत्[7]' पुनः ॥९॥
तन्मालिकां रवौ 'वारेऽप्यमृतेनैव'[8] मार्जयेत् ।
अर्चयेन्मूलमन्त्रेण षोडशैरुपचारकैः ॥१०॥
निवेदयेत् पायसं च शर्कराज्यसमन्वितम् ।
सहस्रं प्रजपेदादौ[10] पञ्चाशद्वर्णमादरात् ॥११॥
'एकाक्षरीमहामन्त्रैर्वगलानाम्नि'[11] पावनैः ।
अयुतं प्रजपेत् पुत्र मालिकासिद्धिमाप्नुयात् ॥१२॥
एवं च मालिकां कुर्यान् मंत्रसिद्धिमपेक्षता[12] ।
हरिद्रावस्त्रमाच्छाद्य सिद्धयर्थं जपमाचरेत् ॥१३॥
हरिद्रामयपुष्पं[13] च हरिद्रामयचन्दनम्[14] ।
समर्पयेदलङ्कृत्य[15] जपं रात्रौ समाचरेत् ॥१४॥
देवी भूत्वा जपेद्देवीमर्चयेद्विधिवद्यथा[16] ।
प्रमादान् मालिका भूमौ पतिता चेत् कुमारक ॥१५॥
पुनः पूजा प्रकर्त्तव्या पूर्ववज्जपमाचरेत् ।
अथ वक्ष्ये प्रयोगांश्च मालिकालक्षणं तथा ॥१६॥
पञ्चविंशतिभिर्मोक्षः[17] 'सर्गं त्रिंशतिरेव च'[18]।
वशीकरणसंमोहे[19]'कला'संख्या सुमालिका'[20]॥१७॥[21]

---

१. घ. कुर्यात् प्रयत्नतः। २. घ. यावन्। ३. घ. गोमवयं। ४. घ. लक्षोयेद्वा०। ५. घ. पुनः। ६. ख. पण्यस्त्री०। घ. स्त्रीनिर्मिते। ७. घ. सूत्रे। ८. घ. एकैकं ग्रंथयेत्। ९. घ. रात्रौ मूलेनैव तु। १०. घ. च जपेच्चादौ। ११. घ. एकाक्षरं-महामंत्रे वंगलायाश्च। १२. घ. ०मपेक्षिता। १३. घ. हरिद्रावर्णपुष्पं। १४. घ. हरिद्रावर्णचन्दनम्। १५. घ. समर्प्य पूजनं कृत्वा। १६. घ. ०स्तथा। १७. घ. मोक्षार्थी। १८. घ. धनार्थी त्रिंशदेव च। १९. घ. संमोहं। २०. क. पुस्तकेऽयमंशो नास्ति। २१. अतः परं निम्नांशो विशेषः ग. घ. पुस्तकद्वये—
'विंशद्भिः स्तम्भनं विद्याद् विनाशे पञ्चमालिका'।

द्विपञ्चसप्तविंशद्भि[1] रुच्चाटे चार्कसंख्यया ।
ज्वरे[2] रोगादिपीडार्थं पंच चैव चतुर्द्दश ॥१८॥

पञ्चाशच्छान्तिकर्माख्ये[3] बुद्धि च चतुरुत्तरे ।
पञ्चदशाभिचारे[4] च मालिकाक्रममी(ई)दृशः[5] ॥१९॥

भृगुवारे च संगृह्य[6] द्रव्याण्येतानि पुत्रक ।
'हरिद्रापङ्कजं वस्तु कर्पूरं मृगनाभि च'[7] ॥२०॥

श्रीखण्डरोचनागरु-केसरं[8] च समं समम् ।
मर्द्दयेन्मु(दु)षसि प्रज्ञ[9] खल्वेनैव कुमारक ॥२१॥

तेन कुर्यात् पुत्तलीं च चतुरङ्गुलमानतः ।
सर्वाङ्गसुन्दरीं[10] देवीं द्विभुजां वगलामुखीम् ॥२२॥

चित्रपीताम्बरधरां[11] पीनोन्नतपयोधराम् ।
पीतवर्णां मदाघूर्णामर्द्धचन्द्रां च पुत्तलीम् ॥२३॥

प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा तु संस्नाप्य[12] विधिनाऽर्भकम् ।
अखण्डतण्डुलेनैव हरिद्राक्षतमेव च ॥२४॥

कृत्वा एकाक्षरीमन्त्रैरक्षतान्[13] मूर्द्धनि निःक्षिपेत् ।
नित्यं चायुतपूजां च कुर्याच्चैव च पुत्रक ॥२५॥

देवीं सम्पूजयेत्सम्यक् जपं कुर्यात् सुबुद्धिमान् ।[14]
एवं कृत्वा तत्त्वलक्षं देवी प्रत्यक्षतामियात्[15] ॥२६॥

यत् परस्मै[16] न वक्तव्यं न वक्तव्यं कदाचन ।
एवं पूजाविधिं कृत्वा पुरा 'दुर्वाससेन च'[17] ॥२७॥

तत्त्वलक्षप्रमाणेन प्राप्तं 'ग्रन्थोदितं फलम्'[18] ।

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतंत्रे चतुर्विंशतिः[19] पटलः ॥२४॥

---

१. क. पुस्तके 'द्विपञ्च' हीनः 'सप्तविंशद्भिः' शब्द एव दृश्यते । घ. विद्वेषे सप्तविंशद्भिः । २. घ. ज्वर । ३. घ. ०कर्मेषु । ४. घ. पञ्चदश्याभि० । ५. घ. ०मीदृशम् । ६. घ. संग्राह्य । ७. ख. घ. पुस्तके निम्नोऽयं पाठो विशेषः—

हरिद्रापङ्कजं वस्तु[1] चन्दनं कुसुमानि च ।
कस्तूरी चैव कर्पूरं 'कर्पूरः मृगनाभि च'[2] ॥

८. घ. गोरोचनमुशीरं च केशरं । ९. ख. ०तुषसि प्रज्ञ । घ. मर्दयेन्मदिरायुक्तं । १०. घ. सुधा च सुन्दरीं । ११. घ. वगला वज्रधरा चैव । १२. घ. संस्थाप्य । १३. घ. एकाक्षरैर्मंत्रै० । १४. घ. पादद्वयं नास्ति । १५. घ. प्रत्यक्षमाप्नुयात् । १६. घ. यस्मै कस्मै । १७. घ. दूर्वासमौनिराट् । १८. घ. ग्रंथोक्तं फलमाप्नुयात् । १९. घ. मालाप्रकरणं नाम चतुर्विंशति ।

---

1. घं. रक्तं । 2. घ. श्रीखण्डं चागरुं तथा ।

।। अथ पञ्चविंशः पटलः ।।

नमामि वगलां देवीं शत्रुवाक्स्तम्भरूपिणीम् ।
भजेऽहं विधिपूर्वं च जयं देहि रिपून् दह ।।१।।

स्कन्द[1] उवाच—

नमः कैलाशनाथाय[2] नमस्ते मुनिसेवित[3] ।
चतुरक्षरीमहामन्त्रं वगलायाश्च मे वद ।।२।।

ईश्वर उवाच—

सप्तकोटिमहामन्त्रै[4] र्मन्त्रराजमिमं[5] शृणु ।
षट्प्रयोगैः स्तंभनं च सर्वकर्मोत्तमोत्तमम् ।।३।।

यदा शत्रुभयोत्पन्नं[6] तदानीमेव पुत्रक ।
अयुतं च जपेन्मन्त्रं वगलाचतुरक्षरम्[7] ।।४।।

मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि न्यासध्यानादिकं तथा ।
प्रयोगं चोपसंहारं वक्ष्येऽहं तव पुत्रक ।।५।।

वेदादि विलिखेत् पूर्वं पाशबीजं ततः परम् ।
स्तब्धमायां ततोच्चार्य अंकुशं बीजमेव च ।।६।।

चतुरक्षरीं च बगलां सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमाम् ।
न्यासविद्यां प्रवक्ष्यामि मन्त्रभेदेन पुत्रक ।।७।।

पाशाङ्कुशान्तरितशक्तिरमां च तद्व-
तद्वन्न्यसेन्मदनबीजमथो वराहम् ।
वागीश्वरीं च बगलाख्यसुबीजराजं,
वन्यस्यतां करयुगे हृदयादिकेषु ।।८।।

चतुर्व्वर्णात्मिके[8] मन्त्रे[9] मातृकाबीजपूर्वकम् ।
प्रत्येकं च न्यसेत् पुत्र मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयात् ।।९।।
अथवा वगलामन्त्रं सर्वैरङ्गुलिभिर्न्यसेत्[10] ।
ततो जपेन्मन्त्रराजं वगलाचतुरक्षरम्[11] ।।१०।।
ब्रह्मा ऋषिश्च छन्दोऽत्र गायत्री समुदाहृतम् ।
देवता वगलानाम्नी ध्यानं वक्ष्ये कुमारक ।।११।।

---

१. घ. क्रौञ्चभेदन । २. घ. कैलासवासाय । ३. घ. मौनिसेवित । ४. घ. चतुरक्षरीमहामंत्रं । ५. घ. ०मिदं । ६. घ. ०भयं प्राप्तं । ७. घ. वगलां चतुरक्षरीं । ८. ख. घ. चतुर्वर्णात्मकं । ९. ख. घ. मंत्रं । १०. घ. अङ्गुलीषु न्यसेत्तथा । ११. घ. ०चतुरक्षरीम् ।

कुटिलालकसंयुक्तां[1] मदाघूर्णितलोचनाम् ।
मदिरामोदवदनां प्रवालसदृशाधराम्[2] ॥१२॥

सुवर्णशैलसुप्रख्यकठिनस्तनमण्डलाम्[3] ।
दक्षिणावर्त्तसन्नाभिसूक्ष्ममध्यमसंयुताम् ॥१३॥

रम्भोरुपादपद्मां तां पीतवस्त्रसमावृताम् ।
एवं ध्यात्वा महादेवीं कुर्याज्जपमतन्द्रितः ॥१४॥

वेदलक्षं जपं कुर्यात् पर्वताग्रे कुमारक ।
'भिक्षाशिनः फलाशीनो'[4] मौनी भूत्वा समाहितः ॥१५॥

तर्प्पणं च दिवा कुर्याद् रात्रौ वा प्रजपेन्मनुम् ।
एवं कुर्यात् पुरश्चर्यां देवी प्रत्यक्षमाप्नुयात् ॥१६॥

रात्रौ होमं च कर्त्तव्यं दिवा ब्राह्मणभोजनम् ।
हरिद्रावस्त्रसंयुक्तं हरिद्रावर्णचन्दनम् ॥१७॥

'हरिद्रां चाक्षमालां च'[5] द्र ावर्णदेवताम् ।
स्मरेच्च जपकाले तु सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ॥१८॥

मधूकपुष्पसंमिश्रमर्चितेन जलेन वा ।
तर्पणं तद्दशांशं च देवतामूर्द्धनि निःक्षिपेत् ॥१९॥

आज्येन मिश्रितं चैव शर्करापायसं हुनेत् ।
पूर्णाहुत्यन्तमनघ[6] ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः॥ २०॥

योगिनीं पूजयेत् पश्चाद् द्रव्यशुद्धिसमन्वितः ।
मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य नात्र कार्या विचारणा ॥२१॥

आदौ भास्वररूपिणीं[7] कुरु तदा सद्वंशजां[8] योगिनीं,
नानालक्षणसंयुतां कुचभरां प्रौढां नवोढां तथा ।
स्ता(स्ना)ताभ्यंजनभूषणैश्च सहितां सच्चन्दनै[9] र्लेपितां,
पूजागारमुपानयेद्रहसि सा[10] द्रव्यैश्च शुद्धया रहः[11] ॥२॥

१. घ. कटिलोलकसंयुक्तां । २. घ. ०पराम् । ३. घ. सुवर्णकलश० । ४. घ. भिक्षाशी च फलाशी च । ५. घ. हरिद्राया क्षमा माला । ६. ख. मनष । घ. मनना । ७. ख. भास्कर० । घ. भाषर० । ८. घ. सज्जातिजां । ९. स्रक्चन्दनै । १०. ख. तां । घ. सद् । ११. ख. घ. सह ।

लौकिके[1] चैव गुप्तात्र सौभाग्यार्चा कुमारक ।[2]
'मन्त्रसिद्धिकरं वक्ष्ये गोपनं कुरु सर्वदा'[3] ॥२३॥
अङ्गत्रयेण संयुक्तं लौकिकार्चनमेव च ।
चतुरंगुलसंयुक्ता[4] गुप्तपूजा कुमारक ॥२४॥[5]
सौभाग्यार्चाविधिश्चैव[6] पञ्चाङ्गोपासनं भुवि ।
योषिद्भुक्तिद्रव्ययुक्तं[7] लौकिकार्चनमेव च ॥२५॥[8]
योषिच्छुद्धिद्रव्यपूजा पञ्चमीयुतमादरात् ।
एतत्सौभाग्यपूजा च मुनिगुह्यमुपासनम्[9] ॥२६॥
बिन्दुपात्रयुता पूजा निर्गुणा योगिनां मतम्[10] ।
एतच्चतुर्विधा चर्या[11] देशनामार्चनाविधिः[12] ॥२७॥
वक्ष्येऽहं[13] विधिवत्पुत्र न देयं यस्य कस्यचित् ।
सृष्टिः स्थितिश्च संहारं जीवन्मुक्तिपदं[14] तथा ॥२८॥
एतदर्चाविधिर्नामसंकेतं मुनिभिः[15] सह ।
सृष्टिश्च गौडदेशेषु[16] स्थितिः केरलदेशके ॥२९॥
संहारार्चा कामरूपे 'कुरुपाञ्चालयोः परम्'[17] ।
पीठोपरि समावेश्य गर्भकौलागमक्रमात्[18] ॥३०॥
अर्चनं[19] गौडदेशीयं[20] सृष्टिपूजाक्रमस्त्वयम् ।
पूर्वोक्तलक्षणोपेतां मृदुपर्य्यङ्कके[21] तथा ॥३१॥
शयनीकृत्य कन्यां[22] च स्थित्यर्चाक्रममादरात्[23] ।
केरले तु स्थितिश्चैव सिद्ध्यसिद्धिकरी[24] तथा ॥३२॥
कौलसारं च तन्नाम सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमम् ।
पूर्वोक्तलक्षणोपेतास्तिष्ठन्ति कन्यका भुवि ॥३३॥

---

१. घः लौकिकी । २. अतः परं निम्नांशोऽयं घ. पुस्तक एव दृश्यते—

एवं त्रिविधपूजां च मुनिगुह्यं सुपावनं ।
एकैकस्य च पूजाया लक्षणं कथ्यते सुत ॥

३. पादयुगं ग. पुस्तके नास्ति । ४. घ. चतुरङ्गसमायुक्तां । ५. श्लोकोऽयं ग. पुस्तके नास्ति । ६. ख. घ. विधिं चैव । ७. घ. योषित्शुद्धि । ८. अतः परं निम्नांशो घ. पुस्तक एवाऽवलोक्यते—

योषिच्छुद्धिद्रव्यपूजा सुगुप्तार्चनमादरात् ।

९. घ. मुनिगुप्तं सुपावनम् । १०. घ. मता । ११. घ. चार्च्चा । १२. घ. ०नामार्चनं । १३. ग. हे । १४. घ. ०मुक्तं पदं । १५. घ. योगिभिः । १६. घ. देशे तु । १७. घ. कौलिकारवो (र्चा, चार) तत्परम् । १८. घ. भर्गकौलागम० । १९. क. अोचंनं । घ. अर्चना । २०. घ. गौडदेशीयं । २१. क. मृत्यु० । २२. ग. घ. शयनीकृतकन्या । २३. घ. स्थित्यर्चामर्च्य० २४. ख. घ. सद्यः सिद्धिकरी ।

कामरूपाख्यदेशे तु संहाराह्वयपूजनम् ।
पूर्वोक्तलक्षणोपेतां कृत्वाभ्यञ्जनमादरात् ॥३४॥

बिन्दुमात्रं[1] गृहीत्वा तु कृत्वा मुक्त्यर्चनं[2] भुवि ।
कुरुपाञ्चालदेशीयमनिशं[3] पूजनं तथा ॥३५॥

कौलसारपरं[4] नाम चागमं भुवि[5] दुर्ल्लभम् ।
सम्यक् पूजाविधिश्चैव उपसंहृतमानसः[6] ॥३६॥

पञ्चमी चैव कर्त्तव्या सौख्यार्थं तस्य पुत्रक ।
'पात्रं चैव समासेन'[7] जपध्यानसमन्वितः ॥३७॥

देवो भूत्वा स्वयं पुत्र पञ्चमीं च समाचरेत् ।
संहारार्चनयोरेवमुपसंहृत्य[8] पूजनम् ॥३८॥

सम्पूजयेत्[9] पञ्चमीं चैव सौख्यार्थं तस्य साधकः ।
आदौ मध्ये तथा चान्ते बिन्दुपात्रार्थमेव[10] च ॥३९॥

अर्चयेत् पञ्चमीं कुर्याद् ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः ।
कुरुपाञ्चालदेशेऽथ[11] निर्गुणार्च्चाविधिस्तथा ॥४०॥

एतदर्च्चाविधिश्चैव दुर्ल्लभो[12] विधिशङ्करैः[13] ।
गौडदेशार्चनं पुंसां शान्तिपुष्टिकरं[14] सदा ॥४१॥

एवमेव विधिः पुत्र सर्वैश्वर्यप्रदायकः ।
कामरूपार्चनं पुंसां मारणविप्रयोगदा[15] ॥४२॥

कुरुपाञ्चालदेशार्च्चा सर्वसिद्धिप्रदा सदा ।[16]
एतदर्च्चाविधिं चैव यः करोति सुबुद्धिमान् ॥४३॥

जीवन्मुक्तः स एवात्र स सिद्धो नात्र संशयः ।
नारीनिन्दा न कर्त्तव्या स्वपादैस्तां न[17] संस्पृशेत्[18] ॥४४॥

नारीं दृष्ट्वा मानसेन वन्दनं च समाचरेत् ।
स्वप्रियामर्च्चयेत् पुत्र प्रियां पञ्चमिकां चरेत् ॥४५॥[19]

---

१. घ. बिन्दुपात्रं । २. गुप्तार्चनं । ३. घ. ०देशे तु अनिशं । ४. घ. ०सारतरं । ५. घ. शुचि । ६. ख. जपसंहृत० । घ. उपसपेद्वत्यसाधकः । ७. घ. न्यासं न्यस्त्वोभयोर्देशे । ८. घ. संहारार्चनयोगं च उप० । ९. पूजयेत् । १०. घ. बिन्दुप्रात्यर्थं० । ११. घ. तु । १२. घ. दुर्ल्लभम् । १३. घ. भुवि षण्मुख । १४. घ. पुष्टिकरि तथा । १५. ख. मारणादिप्रयोगदम् । घ. मारणादिप्रयागकृत् । १६. पदयुग्मं घ. पुस्तके नास्ति । १७. घ. स्वपादौ तां न । १८. घ. स्पृशेत् । १९. श्लोकार्थं नास्ति घ. पुस्तके ।

स्वप्रियाबिन्दुपात्रं[1] च गृहीत्वा साधकोत्तमः[2] ।
प्रसह्येनार्चनं कृत्वा बिन्दुपात्रं तथैव च ॥४६॥
उन्मादी च भवेत् पुत्र मृतः श्वानो भविष्यति ।

॥ इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे पञ्चविंशतिः[3] पटलः॥ २५॥

॥ अथ षड्विंशः पटलः ॥

जातवेदमये[4] देवि[5] जगज्जननकारिणि[6] ।
जय पीताम्बरधरे[7] 'बगलायै नमो नमः'[8] ॥१॥

स्कन्द[9] उवाच—

नमस्ते सिद्धसंसेव्य सिद्धविद्याधरार्चित ।
वगलाचतुरक्षर्याः प्रयोगं वद शङ्कर ॥२॥

शिव[10] उवाच—

'प्रयोगं तर्पणं चैव'[11] वक्ष्येऽहं तव पुत्रक।
तर्पणं देवतावासं तर्पणं यंत्रसिद्धिदम्[12] ॥३॥
तर्पणं मन्त्रसंस्कारं सर्वं तत्तर्पणाद् भवेत् ।
तर्पणं द्रव्ययोगं च ततः[13] सिद्धिर्न संशयः ॥४॥
अर्चनं कलशे चैव काशमण्डलवर्जितम्[14] ।
गृहीत्वा क्षालयेत् सम्यक् पूजयेन्मूलमन्त्रतः[15] ॥५॥
तज्जलं च समानीय पूजयेत् सुसमाहितः ।
आपो वा इति मन्त्रेण मन्त्रयेत्तज्जलं पुनः ॥६॥
उपचारैः षोडशभिः पूजयेत् कुम्भमादरात् ।
तत्पवित्रेण संयुक्तं तर्प्पणस्यायुतेन च ॥७॥
तेनोक्तविधिना सम्यक् पूजनं तदुदाहृतम् ।
काकोलूकच्छदेनैव[16] पवित्रं ग्रन्थिमादरात् ॥८॥
तत्पवित्रेण संयुक्तं तर्पणस्यायुतेन[17] च ।
नेत्ररोगी भवेच्छत्रुर्दिवान्धो जायते ध्रुवम् ॥९॥

---

१. घ. स्वस्त्रिया०। २. ख. साधकोत्तमैः। ३. घ. पूजाप्रकरणं नाम०। ४. ५. ६. ७. घ. पुस्तके द्वितीयान्तः पाठः। ८. घ. बगलाम्बां नमाम्यहम्। ९. क्रौंचभेदन १०. घ. ईश्वर। ११. घ. तर्पणाख्यं प्रयोगं च। १२. घ. मंत्रसिद्धिदं। १३. घ. तच्च। १४. घ. कालमण्डल०। १५. घ. मूलविद्यया। १६. घ. काकोलूकच्छदाभ्यां च। १७. घ. तर्पणेनायुतेन च।

काकपत्रेण संयुक्तं[1] पवित्रग्रन्थिमादरात् ।
तेनैव सह सन्तर्प्य अय्युतं साधकोत्तमः ॥१०॥
काकवद् भ्रमते शत्रुर्महीमामरणान्तिकम्[2] ।
काकोलूकस्य पक्षाभ्यामेकीकृत्वा[3] सुबुद्धिमान् ॥११॥
कृत्वा पवित्रग्रन्थिं च तेन सन्तर्प्य चादरात्[4] ।
अयुतं बगलामन्त्रैः शत्रुविद्वेषणं भवेत् ॥१२॥
विड्वराहमजारोमैः[5] पवित्रग्रन्थिमादरात् ।
तर्पयेदयुतं तेन[6] बगलाचतुरक्षरैः ॥१३॥
अन्नद्वेषो[7] जायते च स शत्रुरवशिष्यते ।
केशं च कलशस्थं च पवित्रग्रन्थिमादरात्[8] ॥१४॥
अयुतं तर्पणेनैव 'स शत्रोर्नशिनं'[9]' भवेत् ।
उष्ट्ररोमेण कृत्वा तु पवित्रग्रन्थिरेव च ॥१५॥
तेनायुतं तर्पणेन मूको भवति पण्डितः ।
पूर्ववद्वाजिरोमेण तर्पणं च कुमारक ॥१६॥
हिक्वारोगो भवेत्तस्य[10] शीघ्रं[11] भ्रान्तो भविष्यति ।
खररक्तेन संमिश्रमर्चितं जलतर्पणात्[12] ॥१७॥
जिह्वास्तंभो भवत्येव वाणीपतिसमोऽपि वा ।
श्वानरक्तेन संमिश्रमर्चितं शुभवारिणा ॥१८॥[13]
अयुतं[14] तर्पणात्पुत्र[15] उन्मादी जायते रिपुः ।
काकरक्तेन सम्मिश्रमर्चितं शुद्धवारिणा ॥१९॥
अयुतं तर्पणात्पुत्र काकवद् भ्रमते महीम् ।
उलूकरक्तसंमिश्रमर्चितं शुभवारिणा ॥२०॥
रिपुरन्धो भवेत् पुत्र अयुताच्च न संशयः ।
मार्जारबालरक्तेन मिश्रिताज्जलतर्पणात्[16] ॥२१॥

---

१. घ. कृत्वा तु । २. घ. ०मातर्पणान्तिकम् । ३. घ. एकीकृत्य तु । ४. घ. बुद्धिमान् । ५. घ. गृध्रवाराहजैर्लोमैः । ६. घ. चैव । ७. ख. अन्यद्वेषो । घ. अन्तद्वेषो । ८. घ. ०माचरेत् । ९. घ. स्वशक्त्या० । १०. घ. भवेच्छीघ्रं । ११. घ. रिपुर् । १२. घ. शुद्धवारिणा । १३. घ. पुस्तकेऽयं श्लोको नास्ति । १४. घ. अयुतात् । १५. घ. तर्पयेत् पुत्र । १६. घ. मिश्रितं जलतर्पणम् ।

भ्रान्तचित्तो भवेच्छत्रुरयुताच्च न संशयः ।
विड्वराहस्य[1] रक्तेन मिश्रितं जलतर्पणम् ॥२२॥
उन्मादी च भवेच्छत्रुरयुतादेव[2] पुत्रक ।
लुलायरक्तसम्मिश्रजलेनैव तु तर्पणम् ॥२३॥
'अयुतादरिगर्वं तु'[3] मूकत्वं कुरुते नृणाम् ।
भुजङ्गरक्तसंमिश्रजलेनैव तु तर्पणम्[4] ॥२४॥
शत्रूणां मारणं पुत्र अयुताच्च न संशयः ।
छागरक्तेन संमिश्रमर्चितेन जलेन च ॥२५॥
तर्पणेनायुतेनैव व्रणरोगी भवेद्रिपुः ।
शशकस्य तु रक्तेन 'मिश्रितेन जलेन च'[5] ॥२६॥
क्षयरोगी 'भवेन्मर्त्योऽप्ययुताच्च'[6] न संशयः ।
मत्कुणस्य च 'रक्तेन मिश्रितेन जलेन च'[7] ॥२७॥
अयुतात्तस्य शत्रोश्च भवेन्मरणमुत्तमम् ।
मेषस्य पुच्छरक्तेन 'मिश्रितेन जलेन च'[8] ॥२८॥
अयुताज्ज्वररोगी[9] च जायते तत्क्षणाद्रिपुः ।
द्रव्येणैव च संमिश्रमर्चितं जलतर्पणम्[10] ॥२९॥
अयुताच्चिन्तितं कार्यं भवत्येव न संशयः ।
एतत्तर्पणयोगं च सिद्धात् सिद्धतरं सुत ॥३०॥
न वक्तव्यं न वक्तव्यं न वक्तव्यं कदाचन ॥

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतंत्रे षड्विंशः[11] पटलः ॥२६॥

॥ अथ सप्तविंशः पटलः ॥

नानालङ्कारशोभाढ्यां नरनारायणप्रियाम् ।
वन्देऽहं बगलां देवीं परब्रह्माधिदेवताम् ॥१॥

स्कन्द[12] उवाच—

वन्दे पाशुपताध्यक्ष परमानन्दविग्रह ।
वद होमप्रयोगं च बगलाचतुरक्षरैः ॥२॥

---

१. घ. विड्वराहेण । २. घ. ०अयुताच्चैव । ३. घ. अयुदक्षिणा पञ्च । ४. घ. तर्पणात् । ५. घ. मिश्रितं जलतर्पणम् । ६. घ. भवेच्छत्रुरयुतात् । ७. घ. मिश्रितं जलतर्पणम् । ८. घ. मिश्रितं जलतर्पणम् । ९. घ. अयुताच्चर्मरोगी । १०. घ. पुस्तके पाठोऽयं विशेषः— नररक्तेन संमिश्रमर्चितं जलतर्पणम् ।
११. घ. चतुरक्षरीतर्पणं प्रयोगं नाम षड्विंशति । १२. घ. क्रौञ्चभेदन ।

शिव उवाच[1]—

वक्ष्ये होमविधिं सम्यक् सावधानेन श्रूयताम् ।
अयुतं पुत्र होमं[2] च पिचुमंदफलैर्हुनेत् ॥३॥

अयुताच्छत्रुसंहारो भ्रान्तभीतो[3] भवेद् ध्रुवम् ।
'करवीराणि रक्तानि'[4] अयुतं चाज्यसंयुतम् ॥४॥

हुनेत् त्रिकोणकुण्डे तु अयुताद्[5] रिपुमारणम् ।
विषतिन्दुकबीजं च सौवीरद्रवसंयुतम् ॥५॥[6]

ग्राममध्ये हुनेन् मन्त्री भगाकारे च कुण्डके ।
तद्ग्रामे वेदशास्त्राणि सर्वं विस्मृतिमाप्नुयात् ॥६॥

शेषभाषापतिप्रख्यः[7] 'स एव जडतामियात्'[8] ।
वटमूलं समाश्रित्य कृत्वा कुण्डं त्रिकोणकम् ॥७॥

तत्फलेन हुनेद् रात्रौ अयुतं चाज्यमिश्रितं ।
भाषापतिसमो विद्वांस्तत्क्षणाद् भ्रान्तिमाप्नुयात् ॥८॥

अश्वत्थमूलमाश्रित्य षट्कोणाकृतिकुण्डके ।
तत्फलं च हुनेद् रात्रौ[9] अयुतं चाज्यमिश्रितम् ॥९॥

स्फोटकव्रणसंयुक्तो 'म्रियते यमशासनात्'[10] ।
उदुम्बरस्य[11] मूले तु षट्कोणाकृतिकुण्डके ॥१०॥

कोमलं तत्फलं सम्यगयुतं चाज्यमिश्रितम् ।
जुहुयाद्रजकस्याग्नौ जुहुयाद्दक्षिणामुखः[12] ॥११॥

ग्रामं वा नगरं वाथ रण्यं राजकुलं 'तु वा'[13] ।
नाडीव्रणसमायुक्तो नानादुःखेन पुत्रक ॥१२॥

म्रियते 'न च'[14] सन्देहो नात्र कार्या विचारणा ।
राजवृक्षं समाश्रित्य तन्मूले च कुमारक ॥१३॥

---

१. घ. ईश्वर । २. घ. होमाच् । ३. घ. भ्रान्तचित्तो । ४. घ. हयारिरक्तकुसुमैः । ५. घ. तत्क्षणाद् । ६. ख. घ. पुस्तकद्वये विशेषोऽयं पाठः—

अयुतं जुहुयान्मंत्री तत्क्षणाद्रिपुमारणम् ।
पलाशबीजमयुतं तिलतैलेन संयुतम् ॥

७. घ. ०प्रख्या । ८. घ. सर्वं विस्मृतिमाप्नुयात् । ९. घ. पुत्र । १०. घ. मारकं भवति ध्रुवम् । ११. घ. औदुम्बरस्य । १२. घ. नग्नो दक्षिणदिङ्मुखः । १३. घ. तथा । १४. घ. नात्र ।

हस्तमात्रं भगाकारं कुण्डं कुर्याद् विचक्षणः ।
तत्फलं निम्बतैलेन मिश्रितं निशि बुद्धिमान् ॥१४॥

नेत्रायुतं हुनेद् धीमान् ग्रामं वा नगरं तथा ।
स्फोटकव्रणसंयुक्तो हस्तपादादिभग्नतः ॥१५॥

पर्यायान् म्रियते चैव[1] नात्र कार्या विचारणा ।
सर्षपं लवणं चैव तिलतैलेन मिश्रितम् ॥ १६॥

अयुतं जुहुयान्मन्त्री ज्वररोगी भवेद्रिपुः ।
पिचुमंदस्य[2] तैलेन मिश्रितं लवणं तथा ॥१७॥

हुनेच्च[3] पूर्ववत् कुण्डे अयुतं प्रेतपावके ।
कुष्ठरोगी भवेच्छत्रुर्म्रियते तेन निश्चितम् ॥१८॥

शमीमूले हुनेत्पुत्र 'श्रृणु वक्ष्यामि तत्फलम्'[4] ।
तिलतैलेन सम्मिश्रं[5] तत्फलं निशि पुत्रक ॥१९॥

जुहुयात्तत्क्षणात् पुत्र 'श्रृणु वक्ष्यामि'[6] तत्फलम् ।
वातरोगी भवेच्छत्रुर्म्रियते नात्र संशयः ॥२०॥

अपामार्गस्य बीजं तु तिलतैलेन मिश्रितम् ।
शमीमूले हुनेत्पुत्र अयुतं ध्यानपूर्वकम् ॥२१॥

तत्रस्थाः शत्रुभार्याश्च तद्गृहे तत्र योषितः ।
वन्ध्याः स्त्रियो भवेयुश्च सत्यमेव[7] शिवोदितम् ॥२२॥

शमीमूलं समाश्रित्य 'शलाटुं च समासतः'[8] ।
तिलतैलेन संमिश्रं जुहुयादयुतं तथा ॥२३॥

प्रेताग्नौ रजकाग्नौ वा पूर्वोक्ते चैव कुण्डके ।
वैरिस्त्रीणां भवेत् सद्यः[9] स्रवद्रक्तं[10] निरन्तरम्[11] ॥२४॥

तिलतैलेन संमिश्रं शलाटु[12] शाल्मलीभवम्[13] ।
पूर्ववच्च हुनेत् पुत्र मेहरोगी[14] भवेद्रिपुः ॥२५॥

---

१. घ. शत्रुः । २. घ. पिचुमंदेन । ३. घ. हुनेत्तु । ४. ख. ग. घ. भगाकारे तु कुण्डके । ५. घ. संयुक्तं । ६. घ. वक्ष्यामि श्रृणु । ७. घ. सत्यमेतच् । ८. घ. शार्दूलस्य च मांसतः । ९. घ. सद्यो । १०. घ. वा यद्रक्तं । ११. घ. सुनिश्चितम् । १२. घ. शैलूषं । १३. घ. ०भवेत् । १४. घ. महद्रोगी ।

एवं होमप्रयोगं च रात्रौ कुर्यात् कुमारक ।
'प्रयोगं चोपसंहारं सत्पुत्रायापि नो वदेत्'[1] ॥२६॥[2]

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतंत्रे सप्तविंशतिः[3] पटलः ॥२७॥

॥ अथाष्टाविंशतिः पटलः ॥

बालभानुप्रतीकाशां[4] नीलकोमलकुन्तलाम्[5] ।
वन्देऽहं वगलां देवीं स्तम्भनास्त्रस्वरूपिणीम् ॥१॥

स्कन्द उवाच—[6]

विश्वनाथ नमस्तेऽस्तु विरूपाक्ष नमो नमः ।
सुगमं[7] स्तम्भविद्यायाः प्रयोगं वद शङ्कर ॥२॥

शिव[8] उवाच—

वगलाहृदयं मंत्रं गुप्तगुप्ततरं[9] तथा ।
एतच्छ्रवणमात्रेण मंत्रसिद्धिमवाप्नुयात् ॥३॥

न ध्यानं न च होमं च न जपं न चतर्पणम् ।
सकृदुच्चारणान् मंत्राच्चिन्तितं[10] भवति ध्रुवम् ॥४॥

न चाभिषेकं न च मंत्रदीक्षा,
न चात्र[11] दिक्काल ऋतुश्च[12] देवता[13] ।
न चापि पञ्चेन्द्रियनिग्रहं च,
सकृत् स्मरन्वै वगलाख्यहृन्मनुम्[14] ॥५॥

वगलाहृदयं मंत्रं ब्रह्मादीनां च दुर्लभम् ।
सकृत् स्मरणमात्रेण वाञ्छितं फलमाप्नुयात् ॥६॥[15]

---

१. घ. पुस्तकेऽयमंशो विशेषः—प्रयोगादौ प्रयोगान्ते पूजां कुर्यात् प्रयत्नतः ।
२. घ. पुस्तके श्लोकोऽयं विशेषो लभ्यते—

एवं यः कुरुते पुत्र प्रयोगं सिद्धिमाप्नुयात् ।
पूजां विना कृतं कर्म प्रयोगं निष्फलं भवेत् ॥२७॥

३. घ. चतुरक्षरीहोमकथनं नाम सप्तविंशतिः । ४. घ. बालभाव० । ५. घ. ०कुण्डलाम् । ६. घ. क्रौञ्चभेदन । ७. घ. सुभगं । ८. घ. ईश्वर । ९. घ. गुप्तात्० । १०. घ. तस्य चिन्तितं । ११. घ. न चापि । १२. ख. दिक्कालक्रमश्च । घ. दिक्पालक । १३. घ. देवताश्च । १४. घ. ०हृन्मनुः । १५. पद्यार्द्धमिदं ख. ग. पुस्तकद्वयेऽधिकं दृश्यते—

संसारवान् भवेत् पङ्गु वादी मूकत्वमाप्नुयात् ।

दरिद्रोऽपि भवेच्छ्रीमान् स्तब्धीभवति[1] पण्डितः ।
चतुरो मुष्करश्चैव[2] कीर्त्तिमान् निन्दको भवेत् ॥७॥

कवीश्वरोऽपि चोन्मादी[3] भोगासक्तोऽपि रोगवान् ।
रोगवान्[4] क्षयरोगी स्यात्[5] कुलजो[6] निन्दको भवेत् ॥८॥

मानी लघुतरश्चैव[7] नैष्ठिको भ्रष्टतां व्रजेत् ।
एतद्विना कलौ पुत्र सुकृतकीर्त्तिकारणम्[8] ॥९॥

गुणश्च वर्त्तते पुंसां तस्योत्पन्नकारणम्[9] ।
वगलाहृदयं मंत्रं सकृदावर्त्तयेत्तु यः ॥१०॥

तस्योल्लंघनमात्रेण नष्टः स्यात्पद्मजोऽपि वा ।
वगलाहृदयं मंत्रमुपासनपरस्य च ॥११॥

करोति यस्य[10] सन्तोषं तस्य सिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
येन केनाप्युपायेन हृन्मंत्रं येन[11] जायते ॥१२॥

सन्तोषं जनयेत् तस्य[12] चिन्तितं फलमाप्नुयात् ।
तन्मन्त्रोद्धारमतुलं 'तत्वतः स्वविधानतः'[13] ॥१३॥

वक्ष्येहं तव सर्वञ्च[14] क्रौञ्चभेदन तच्छृणु ।
पाशबीजं ततोच्चार्य[15] स्तब्धमायां ततोच्चरेत्[16] ॥१४॥

अंकुशं बीजमुच्चार्य भूव(वा)राहं तथोच्चरेत् ।
वाराहं वाग्भवं चैव कामराजं ततः परम् ॥१५॥

श्रीबीजं भुवनेशीं च 'वगलामुखिपदं वदेत्'[17] ।
आवेशयद्वयं चोक्त्वा पाशबीजमतोच्चरेत् ॥१६॥

स्तब्धमायां ततोच्चार्य[18] मङ्कुशं बीजमुच्चरेत् ।
ब्रह्मास्त्ररूपिणीं चोक्त्वा एहियुग्मं ततोच्चरेत् ॥१७॥

पाशबीजमतोच्चार्य[19] स्तब्धमायां ततोच्चरेत् ।
अङ्कुशं बीजमुच्चार्य मम शब्दं ततोच्चरेत् ॥१८॥

---

१. क. स्तल्ली० । ख. घ. स्तब्धो भवति । २. घ. पुष्कर० । ३. घ. उन्मादी । ४. ग. रंगवान् । घ. सत्ववान् । ५. घ. च । ६. घ. कुलवान् । ७. घ. लज्जाविहीनस्तु । ८. ख. घ. सुकृतं कीर्त्ति० । ९. ख. ग. तस्योपासन० । घ. तस्य नाशन० १०. घ. तस्य । ११. घ. यस्य । १२. घ. सद्यः । १३. घ. तदाराधनलक्षणम् । १४. घ. सर्वत्र । १५. घ. समुच्चार्य । १६. घ. समुच्चरेत् । १७. घ. वगलामुखि उच्चरेत् । १८. घ. समुच्चार्य । १९. घ. पाशबीजं समुच्चार्य ।

हृदये 'तु समुच्चार्यं'[1] आवाहययुगं वदेत् ।
सान्निध्यं कुरुयुग्मं च पुनर्बीजत्रयं वदेत् ॥१९॥

ममैव हृदयेत्युक्त्वा चिरं तिष्ठद्वयं वदेत् ।[2]
'पुनर्बीजत्रयं चोक्त्वा'[3] हुं फट् स्वाहासमन्वितः[4] ॥२०॥

अशीतिवर्णसंयुक्तो[5] 'वगलाहृदयं मनुः'[6] ।[7]
वन्ध्यामुन्मार्जयेदङ्गं[8] वगलाहृदयेन च ॥२१॥

वन्ध्या पुत्रवती चैव षण्मासाद् भवति ध्रुवम् ।
वगलाहृदयेनैव त्रिसप्तमभिमन्त्रितम् ॥२२॥

'पयः पिबति वा सा स्त्री'[9] वन्ध्या[10] पुत्रवती भवेत् ।
कृत्रिमेषु च रोगेषु नानाभयसमुद्भवे[11] ॥२३॥

त्रिसप्तमन्त्रितं तोयं सद्यो नैर्मल्यमातनोत् ।
नित्यमष्टोत्तरशतं[12] वगलाहृदयं मनुम् ॥२४॥

चिन्तितं च भवेत् पुत्र नात्र कार्या विचारणा ।

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतंत्रे अष्टाविंशतिः[13] पटलः ॥२८॥

॥ अथोनत्रिंशः पटलः ॥

नमस्ते देवदेवेशि नमः स्वर्णविभूषणे ।
पानपात्रयुते देवि वगले त्वां नतोऽस्म्यहम् ॥१॥

स्कन्द[14] उवाच—

अष्टमूर्त्ते नमस्तुभ्यं आनन्दगणसागर[15] ।
वगलाहृदयं यन्त्रं[16] प्रयोगं वद शङ्कर ॥२॥

ईश्वर उवाच—

बिन्दुत्रिकोणषट्कोणवृत्तत्रयविभूषितम् ।
षट्कोणं चैव वृत्तं च भूपुरद्वयसंयुतम् ॥३॥

---

१. पदमुच्चार्यं । २. निम्नांशोऽयं घ. पुस्तक एव दृश्यते विशेषः—

पाशबीजं ततोच्चार्यं स्तम्भमायां ततोच्चरेत् ।

३. घ. अङ्कुशबीजमुच्चार्यं । ४. घ. स्वाहेति उच्चरेत् । ५. घ. ०मंत्रोऽयं । ६. घ. मुनिगुह्यं सुपावनम् । ७. घ. पुस्तक एवायमंशो विशेषः—

पुत्रं देयं शिरो देयं न देयं हृदयं मनु ।

८. घ. वन्ध्यायां मार्जयेदेवं । ९. घ. पिबेदुदयकाले तु । १०. घ. सापि । ११. घ. ०समुच्चये । १२. घ. ०अष्टोत्तरं जप्त्वा । १३. घ. हृदयप्रयोगं नाम अष्टाविंशतिः । १४. घ. क्रौञ्चभेदन । १५. [illegible]गुणसागर । १६. घ. मन्त्रं ।

मध्ये लिखेन्महामन्त्रं वगलाहृदयं तथा ।
त्रिकोणेषु लिखेद् बीजं वगलाख्यं सुपावनम् ।।४।।
षट्कोणे वा लिखेन्मन्त्रं षट्त्रिंशद्वर्णकारकम् ।
शताक्षरीमहामन्त्रमाद्यवृत्ते लिखेत् क्रमात् ।।५।।
'तस्योपरि च संवेष्टच वगलाबीजमादरात्'[1] ।
तस्योपरि[2] विलिखेद्यन्त्रं 'स्वर्णे वा रौप्यपत्रके'[3] ।।६।।[4]
लिखित्वा शुभलग्ने तु स्पष्टरेखाश्च[5] संलिखेत् ।
स्पष्टबीजानि संलिख्य पूजयेदर्कवासरे ।।७।।
'सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रं दुर्गाहृदयमादरात्'[6] ।
योगिनी: पूजयेत्तत्र धूपदीपार्चनादिभि: ।।८।।
कौलार्चनविधानेन मन्त्रसिद्धिर्भवेद्[7] ध्रुवम् ।
सुरक्तै: पूजयेद्यन्त्रं 'हयारिकुसुमै: शुभै:'[8] ।।९।।
इष्टसिद्धिर्भवेत्तस्य अयुतं जपमादरात् ।
मल्लिकाकुसुमेनैव[9] ह्यष्टोत्तरशतं जपेत् ।।१०।।
वगलाहृदयेनैव ह्यर्चयेज्ज्वरशान्तये ।
'मल्लिकाकुसुमेनैव ह्यष्टोत्तरशतं जपेत्'[10] ।।११।।
वगलाहृदयेनैव अष्टादशशतं तथा ।
अभ्रान्तं[11] वेदशास्त्राणां व्याख्याता भवति ध्रुवम् ।।१२।।

---

१. ख. घ. पुस्तकद्वये पादद्वयस्थाने निम्नांशो लभ्यते—
तदुपरि च संवेष्टच पञ्चाशद्वर्णमादरात् ।
तस्योपरि च संवेष्टच वगलाबीजमादरात् ।।
तस्योपरि च षट्कोणे वगला चतुरक्षरी ।
कोणे कोणे लिखेन्मन्त्रं प्रत्येकं च कुमारक ।।
२. ख. घ. एवं च । ३. घ. स्वर्णरौप्यादिताम्रके । ४. अस्याग्रे निम्नांशो दृश्यतेऽधिक: ख. घ. पुस्तकयुग्मे—
'अष्टम्यां च'[1] चतुर्दश्यां नवम्यां भौमवासरे'[2]
उत्तराभिमुखो भूत्वा लेखिन्या स्वर्णजातया[3] ।।
५. घ. स्पष्टरेखासु । ६. घ.—
प्रजपेद् बगलायाश्च सहस्रं हृदयं मनुः ।
७. घ. सिद्धमन्त्रो भवेद् । ८. घ. हयारैश्च सुबुद्धिमान् । ९. ख. ०कुसुमैश्चैव । घ. ०कुसुमैर्दिव्यै: । १०. ख. घ.— स्यमन्तकुसुमेनैव ह्यर्चयेच्छतमादरात् । ११. घ.अश्रुतान् ।

---

1. घ. कृष्णाष्टम्यां । 2. घ. मथवा पौर्णिमादिने । 3. हेमतारयो: ।

वकुलैः पूजयेद्यंत्रं पुत्रवान् जायते नरः ।
'पलाशकुसुमैरर्चेद्यंत्रराजं'[१] कुमारक ॥१३॥
विद्यासिद्धिर्भवेत् पुत्र पूर्वसंख्याक्रमात्सुत[२] ।
पद्मपत्रेण सम्पूज्य पूर्ववद्यंत्रमादरात्[३] ॥१४॥
कुबेरसदृशो भूत्वा 'लभते भुवि संपदः'[४] ।
नन्द्यावर्त्तैर्यन्त्रराजं पूजयेत् पूर्ववत् सुत ॥१५॥
त्रैलोक्यं 'वशमाप्नोति पूजायाश्च प्रभावतः'[५] ।
चम्पकेनैव सम्पूज्य पूर्ववद्विजितेन्द्रियः ॥१६॥
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनां स्तम्भनं भवेत् ।
विल्वपत्रेण सम्पूज्य पूर्वसंख्यासु बुद्धिमान् ॥१७॥
द्रव्यलाभं[६] भवेत्तस्य तत्क्षणादेव पुत्रक ।[७]
अशोकपुष्पैः सम्पूज्य पूर्ववद्विजितेन्द्रियः ॥१८॥
श्रेष्ठराज्यं भवेत्पुत्र अनायासेन साधकः ।
केतकीकुसुमेनैव पूर्ववत्पूजयेत्सुत ॥१९॥
निधानं[८] लभते तस्य शिवस्य वचनं यथा ।
पीतवर्णेन पुष्पेण 'निर्गन्धेन सुगन्धिना'[९] ॥२०॥
अर्चयेदयुतं मंत्री षोडशैरुपचारकैः ।
वाचां[१०] सिद्धिर्भवेत्तस्य देवीरूपो न संशयः ॥२१॥
तस्य दर्शनमात्रेण सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ।
यजेत्तद्वगलायन्त्रं[११] मुनिगुह्यं सुपावनम् ॥२२॥
प्रकाशयेन्न[१२] कस्यापि देवताशापमाप्नुयात् ।
इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतंत्रे एकोनत्रिंशः[१३] पटलः ॥२९॥

---

१. घ. पालाशपुष्पसंपूज्यः मंत्रराजं । २. पूर्वसंख्या पुत्रक । ३. घ. पूर्ववत् क्रौंच-भेदन । ४. घ. मोदितो भुवि संपदैः । ५. घ. वशमायाति यावज्जीवं न संशयः । ६. घ. द्रव्यलाभो । ७. घ. पुस्तक एव निम्नः श्लोको दृश्यते विशेषः—

तुलसीमंजरीभिस्तु पूर्ववत्पूजयेन्नरः ।
राजलाभो भवेत् सद्य अयत्नादेव पुत्रक ॥

८. ख. विधानं । ९- घ. निर्गन्धैर्वा सुगन्धिभिः । १०. घ. वाञ्छा । ११. घ. य-एतद्वगलामंत्रं । १२. घ. न देयं यस्य । १३. घ. बगलायंत्रप्रकाशनं नाम एकोनत्रिंशः ।

अथ त्रिंशः पटलः ॥

नमस्ते देवदेवेशि पुत्रपौत्रप्रवर्द्धिनी(नि) ।
स्तम्भनार्थं भजेऽहं त्वां पीतमाल्यानुलेपनाम्[1] ॥१॥

स्कन्द[2] उवाच—

नमस्ते सर्वसर्वेश पुराणपुरुषोत्तम ।
वगलाष्टाक्षरमंत्रं[3] वद मे करुणाकर ॥२॥

शिव[4] उवाच—

वेदादि 'विलिखेत् पूर्वं'[5] पाशबीजमनन्तरम् ।
स्तम्भमायां[6] ततोच्चार्य अङ्कुशं बीजमेव च[7] ॥३॥

'हुं फट् स्वाहा'[8]-समायुक्तं मन्त्रमष्टाक्षरं[9] तथा ।
ब्रह्मा ऋषिश्च छन्दोऽस्य[10] गायत्री समुदाहृता ॥४॥

'देवता वगलानाम्नी चिन्मयी विश्वरूपिणी'[11] ।
ॐ बीजं ह्लीं शक्तिश्च क्रों कीलकमुदाहृतम् ॥५॥

न्यासविद्यां च वगलामन्त्रराजवदाचरेत्[12] ।
ध्यानं चैव प्रवक्ष्यामि मन्त्रभेदेन पुत्रक ॥६॥

युवतीं च मदोद्रिक्तां[13] पीताम्बरधरां शिवाम् ।
पीतभूषणभूषांगीं समपीनपयोधराम् ॥७॥

मदिरामोदवदनां प्रवालसदृशाधराम् ।
'पानपात्रं च शुद्धिं च'[14] बिभ्रतीं वगलां स्मरेत् ॥८॥

एवं ध्यात्वा जपेत् पुत्र[15] वगलाष्टाक्षरीमनुम् ।
ध्यानेनैव[16] जपं कुर्याद् ध्यायेदाद्यन्तयोस्तथा[17] ॥९॥

'अशोकमूले निवसन् मधुरारससंयुतम्'[18] ।
हरिद्रामालिकाभिश्च वर्णलक्षं जपेन्मनुम् ॥१०॥

---

१. ग, पीतमाल्यांबुलेपनाम् । २. घ. रा. क्रौञ्चभेदन । ३. ख. घ. रा. बगलाष्टाक्षरी-मंत्रं । ४. ख. घ. रा. ईश्वर । ५. ख. लिखितरादौ तु । ६. ख. घ. रा. स्तब्धमायां । ७. रा. बीजमुच्चरेत् । ८. ख. बगला च । ९. घ. मंत्रमष्टाक्षरी । १०. रा. छन्दोऽत्र । ११. '-' अयमंशः ख. पुस्तके नास्ति । रा. ०बीजरूपिणी । १२. ख. घ. बगलां० । १३. ख. घ. ०मदोन्मत्तां । रा. यौवनां च मदोन्मत्तां । १४. घ. रा. वैरिजिह्वां पानपात्रं । १५. घ. रा. मंत्रं । १६. रा, ध्यायतेव । १७. ख. ०पराम् । १८. घ. रा. अशोकमूलमाश्रित्य हरिद्राम्बरसंयुताम् ।

अष्टायुतं तर्पणं च हेतुसम्मिश्रवारिणा ।
तद्दशांशं हुनेत् पुत्र अन्नेन[1] 'च समं मधु'[2] ॥११॥

योगिनीं पूजयेत् पश्चाद् गर्भकौलागमक्रमात् (मैः) ।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चाच्छतं[3] 'वाष्टशतं तु वा'[4] ॥१२॥[5]

एतन्मन्त्रस्य माहात्म्यं शिवो जानाति नान्यथा ।
बिल्वमूले जपेन्मंत्रमयुतं ध्यानपूर्वकम् ॥१३॥

लक्ष्मीवान् जायते पुत्र दरिद्रस्तु[6] न संशयः ।
अश्वत्थमूले प्रजपेदयुतं पूर्ववन्नरः[7] ॥१४॥

अश्रुतानां[8] च शास्त्राणां[9] व्याख्याता भवति ध्रुवम् ।
शमीमूले जपेन्मंत्रमयुतं पूर्ववन्नरः[10] ॥१५॥

अष्टराज्यं लभेत्पुत्र[11] अनायासेन निश्चितम्[12] ।
बदरीमूलमाश्रित्य अयुतं पूर्ववज्जपेत्[13] ॥१६॥[14]

वशीकरणसम्मोहौ 'जाय(ये)ते नात्र संशयः'[15] ।
उदम्बरतरोर्मूले[16] पूर्ववज्जपमाचरेत् ॥१७॥[17]

कुबेरसदृशः श्रीमान् जायते नात्र संशयः ।
कदलीमूलमाश्रित्य पूर्ववज्जपमाचरेत्[18] ॥१८॥[19]

---

१. ख. आज्येन । रा. तत्फलं । २. रा. कुसुमं मधु । ३. घ. रा. पुत्र शतं । ४. रा. वा तु तदर्द्धकम् । ५. ख. घ. रा. पुस्तकेषु विशेषः पाठो दृश्यते—

घ. रा. ध्यानोक्तां बगलां देवीं चर्मदृग्दर्शनीभवेत् ।
ख. ईमदर्शने भवे देवि नान्यथा शिवभाषितम् ।

६. ख. घ. दरिद्रोऽपि । ७. घ. ध्यानपूर्वकम् । ८. ख. घ. अश्रुतानि । रा. अश्रुतं । ९. ख. घ. शास्त्राणि । रा. वेदशास्त्राणां । १०. ख. प्रजपेन्नरः । ११. ख. भवेत् सद्यो । १२. ख. रा. पुत्रक । १३. रा. ०न्नरः । १४. श्लोकोऽयं नास्ति घ. पुस्तके । १५. रा. स्वभावेनैव जायते । १६. घ. औदुम्बर० । १७. घ. पुस्तके श्लोकोऽयं नास्ति १८. घ. रा. अयुतं पूर्ववत् जपेत् । १९. घ. पुस्तके पद्यमदो नास्ति ।

'प्रयोगादीनि सर्वाणि सर्वसिद्धिर्भवेत्सुत'[1] ॥१९॥

॥ इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे त्रिंशत्पटलः[2] ॥३०॥

॥ अथ एकत्रिंशः पटलः ॥

विराट्स्वरूपिणीं देवीं विविधानन्ददायिनीम् ।
भजेऽहं बगलां देवीं भक्तचिन्तामणिं शुभाम्[3] ॥१॥

क्रौञ्चभेदन उवाच—

चन्द्रोपेन्द्रमहेन्द्रादिसंनुतः[4] सर्वमङ्गला(ल) ।
बगलाष्टाक्षरीमन्त्रं(न्त्र) प्रयोगान्[5] वद शङ्कर ॥२॥

---

१. ख. पुस्तके एतदशंस्थानेऽयमंशः समुपलभ्यते—

'प्रयोगादीनि सर्वाणि पूर्ववत्कारयेत् सुधीः ।
एतत्क्रमेणैव पुत्र बगलाष्टाक्षरीविधिः ।
संक्षेपेन मया प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥

अस्याग्रे निम्नांशो घ.पुस्तक एव दृश्यते—

अयुताल्लभते भोगं वाञ्छितं शिवता इव ।
पूगीवनं समाश्रित्य अयुतं पूर्ववज्जपेत् ॥१९॥

निक्षेपं लभते पुत्र अयुतान्मासमात्रतः ।
जंबीरतरुमाश्रित्य अयुतं पूर्ववज्जपेत् ॥२०॥

राजा चैव यथो भूत्वा सर्वस्वं दीयते ध्रुवम् ।
उद्यानवनमाश्रित्य अयुतं पूर्ववज्जपेत् ॥२१॥
यं यं वापि स्मरेत् पुत्र तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ।
पुष्पवाट्यां जपेन्मंत्रमयुतं पूर्ववत् सुत ॥२२॥

राजलाभो भवेत्तस्य नात्र कार्या विचारणा ।
नदीतीरे जपेन्मंत्रमयुतं पूर्ववन्नरः ॥२३॥
पुत्रवान् जायते लोके धनधान्यादिसंयुतः ।
एतन्मंत्री जपेन्मंत्रं तत्तत्फलमवाप्नुयात् ॥२४॥

एतदष्टाक्षरीमंत्रं सर्वमंत्रोत्तमोत्तमम् ।
प्रयोगादीनि सर्वाणि सर्वसिद्धिर्भवेत्सुत ॥२५॥

२. अष्टाक्षरीप्रयोगं नाम त्रिंशत्पटलः ।

३. रा० नमस्ते लोकजननी(नि) व्यासवाल्मीकिवन्दिते ।
स्तम्ब(म्भ)नास्त्रस्वरूपिण्यं बगले त्वां नमाम्यहम् ॥

४. रा० इन्द्रोपेन्द्रमहेन्द्रादिसन्तुष्ट । ५. रा. प्रयोगं ।

ईश्वर उवाच—

सर्षपं लवणं चैव चिताभस्म समं समम् ।
अर्कक्षीरेण खल्वेन मर्दयेत्[1] सूक्ष्मतोऽनघ[2] ॥३॥

अङ्गुष्ठमात्रां[3] कृत्वा तु पुत्तलीं पूर्ववत् सुत ।
बदरीकण्टकं[4] चैव सर्वाङ्गे तस्य लेपयेत्[5] ॥४॥

आरनालस्य भाण्डे तु अधोमुखीं[6] विनिक्षिपेत् ।
'अङ्गारवासरे पूज्या'[7] पुनस्तत्रैव निक्षिपेत् ॥५॥

एवं मासत्रयं कृत्वा 'जिह्वास्तंभं भवेद् रिपोः[8] ।
रवौ रात्रौ च संगृह्य[9] चिताभस्म समादरात् ॥६॥

बगलाष्टाक्षरीमंत्रं 'अयुतं मंत्रयेत्'[10] सुत ।
खाने पाने च तद्भस्म दातव्यं वैरिणस्तथा[11] ॥७॥

जिह्वा मुखं[12] च कर्णाक्षिपादाद्रिस्तंभनं[13] भवेत् ।
तेनैव म्रियते शत्रुर्मासान्मण्डलमात्रतः[14] ॥८॥

आरनालेन[15] तद्भस्म रहस्येन विनिक्षिपेत्[16] ।
तदन्नभक्षणेनैव बुद्धिभ्रंशोऽपि[17] जायते ॥९॥

तद्भस्म तिलतैलेन शिरोभ्यङ्गं समाचरेत् ।
तेनैव तत्क्षणात् पुत्र[18] चित्तचाञ्चल्यवान्[19] भवेत् ॥१०॥

तद्भस्म चूर्णमिश्रं[20] 'कृत्वा चूल च वर्णकम्'[21] ।
'तेन शत्रुस्तत्क्षणाच्च'[22] बुद्धिजाड्यो भवेद् ध्रुवम् ॥११॥

विप्रचाण्डालयोः शत्यं[23] (सत्यं) प्रेतवस्त्रेण वेष्टयेत् ।
बगलाष्टाक्षरीमंत्रं[24] मंत्रयित्वा सहस्त्रकम्[25] ॥१२॥

---

१. रा. मर्दयं । २. रा. सूक्ष्मतो मुखम् । ३. घ. मात्रं । ४. रा. ०कण्टकान् । ५. रा. निक्षिपेत् । ६. रा. अधोभागे । ७. '—' रा. अङ्गारवारे सम्पूज्य । ८. रा शत्रुस्तम्भो भवेद् ध्रुवम् । ९. रा. संग्राह्य । १०. रा. मन्त्रयेन्नयुतं । ११. वैरिणा तथा । १२. रा. मतिः । १३. रा. कर्णादि० । १४. रा. शत्रुमण्डलं नात्र संशयः । १५. रा. आरनाले च । १६. रा. च निक्षिपेत् । १७. रा. बुद्धिभ्रष्टोऽभि । १८. रा. शत्रु । १९. रा. चित्तं चाञ्चल्यवाग् । २०. रा. मिश्रं तु । २१. रा. कृत्वा ताम्बूलचर्वणम् । २२. रा. कृत्वा तत्क्षणाच्छत्रु । २३. रा. शल्य । २४. रा. बगलाष्टाक्षरैमंन्त्रैः । २५. रा. मवस्नकम् ।

रवौ रात्रौ शत्रुगेहे[1] ईशान्ये नैव(चैव) निक्षिपेत् ।
मण्डलांतद्गु(तगृं)हस्थोऽपि[2] म्रियते नात्र संशयः ॥१३॥

कंटकं[3] पुरपक्षस्य[4] त्रिसहस्रं तु मन्त्रयेत् ।
निक्षिपेच्छत्रुसदने नित्यं क[ल]हमाप्नुयात् ॥१४॥

काकोलूकदलं चैव 'भौमे वा रविवासरे'[5] ।
संग्रहेत् प्रेतवस्त्रेण वेष्टयेद् रविवासरे ॥१५॥

निक्षिपेद् रविवारे तु रिपु(पो)र्गेहे तु[6] बुद्धिमान् ।
ग्र(गृ)हविद्वेषणं[7] सद्यो जायते नात्र संशयः ॥१६॥

सर्ष(र्पं) मण्डूकयोः शल्यं प्रेतरज्वा तु वेष्टयेत् ।
निक्षिपेच्छत्रुसदने स श[त्रु]रवशिष्यति ॥१७॥

मार्जारबालरोमाञ्च(णि)[8] रवौ रात्रौ च संग्रहेत् ।
प्रेतवस्त्रं रवौ ग्राह्यं शिवनिर्माल्यमेव च ॥१८॥

रवौ रात्रौ च संग्राह्य नरास्थि च समं समम् ।
चूर्ण(र्णी) कृतं[9] तु तत्सर्वं मन्त्रयेदयुतं तथा ॥१९॥

धूपयेच्छत्रुसदने तस्य संचारयो(ण)-स्थले ।
'तद्धूपवासने शत्रुमूंको'[10] भवति तत्क्षणात् ॥२०॥

तच्चूर्णं देवतागारे भृगुवारे च धूपयेत् ।
'पलायते च तन्मंत्री'[11] शिवस्य वचनं यथा ॥२१॥

गजाश्ववृषभोलूकमहिषोरगकुक्कुटम्[12] ।
तच्चूर्णं धूपयोगेन सर्वं तृणजलादिकम् ॥२२॥

म्रियते सप्तरात्रेण स्वेदजाण्डजपिज(ड)जाः[13] ।
एतच्चूर्णं वृक्षमूले धूपयेच्च[14] कुमारक ॥२२॥

फलितं पुष्पितं वाथ स्थूलवृक्षमथापि वा ।
'सप्ताहात् शुष्कतां'[15] याति सिद्धियोगः कुमारकः ॥२४॥

---

१. रा. गृहे । २. रा. मण्डलं तु ग्रहस्तोपि । ३. रा. कंठकं । ४. रा. परपुष्टिश्च । ५. रा. भोमवारस्य वासरे । ६. रा. सु । ७. रा. ०गृहे० । ८. रा. मार्जारीरोमबालं च । ९. रा. चूर्णं कृत्वा । १०. रा. धूपवासने शत्रुश्च मूको । ११. रा. पलायंती वनं मूर्त्ति । १२. रा. ०कुकुंटाः । १३. रा. श्वेतजांश्चांडजापि च । १४. रा. ०तु । १५. रा. समाहाच्छुष्कातं ।

मृगाणां[1] चैव शत्रूणां खाने पाने प्रयत्नतः ।
बुद्धिनाशो भवेश्छत्रु(त्रो)स्त्रिदिनं भक्षणात्[2] सुत ॥२५॥

प्रजां[3] बुद्धिं श्रियं चैव ऐश्वर्यं हरते[4] नृणाम् ।
एतच्चूर्णप्रयोगं[5] च ऋषीणामपि दुर्ल्लभम्[6] ॥२६॥

चिताभस्म रवौ रात्रौ संग्रहेच्च[7] तदर्भक ।
अयुतं मन्त्रयित्वा तु रिपुमूर्ध्नि विनिक्षिपेत् ॥२७॥

काकवद् भ्रमते शत्रुर्महि(ही)मामरणान्तिकम् ।
'शिलामामलकं प्रस्थं'[8] सहस्रं संग्रहेद् बुधः ॥२८॥

'अर्कवारे तु संध्यायां'[9] मंत्रेणैकेन मन्त्रये[त्][10] ।
मंत्रितं 'निक्षिपेद् दूरे(द्वारे)'[11] दक्षिणाभिमुखेन च ॥२९॥

नित्यं चैव सहस्रं तु निक्षिपेद् दशवासरे[12] ।
उच्चाटनं भवेच्छत्रोर्नान्यथा शिवभाषणम् ॥३०॥

धत्तूरपत्रमादाय सहस्रं मन्त्रयेन्निशि ।
प्रेतवस्त्रेण संवेष्टच भौमे शत्रुनिकेतने ॥३१॥

निक्षिपेद् द्वारदेशे तु मूको भवति तद्रिपुः ।
तन्मार्गे संचरेद् यस्तु तत्सर्वेऽप्यरिमन्दिरे[13] ॥३२॥

'खरबालं च रोमं च'[14] प्रेतरज्जुस्तथैव च ।
मन्त्रयेदयुतं[15] मंत्रं[16] निक्षिपेच्छत्रुमन्दिरे ॥३३॥

पक्षाद् वा मासयोगेन् 'स शत्रुर्बान्धवैः सदा'[17] ।
म्रियते नात्र[18] सन्देहो नात्र कार्या विचारणा ॥३४॥

एतच्च बगलामन्त्रप्रयोगं[19] भुवि दुर्ल्लभम्[20] ।
गुरुपुत्राय दातव्यं[21] न दद्याद्[22] यस्य कस्यचित् ॥३५॥

इति श्री[23] सांख्यायनतन्त्रे 'अष्टाक्षरीप्रयोगं नाम'[24] एकत्रिंशत्पटलः ।

---

१. रा. पितृणां । २. रा. भक्षयेत् । ३. रा. प्रज्ञां । ४. रा. हनते । ५. रा. प्रयोगः । ६. दुर्लभः । ७. रा. संग्रहेत । ८. रा. शटालूमूलकेप्रस्थं । ९. रा. अवकाशपिसंख्यायां । १० रा. त्तां वदेत् । ११. रा. विनिक्षिपे । १२. रा. ०वासरम् । १३. रा. ०प्यतिमन्दधी । १४. रा. खरबालकरोमाणि । १५. १६. रा. ०दयुतंमंत्रं । १७. रा. बुद्धिनाशनपूर्वकम् । १८. रा, न च । १९. रा. ०प्रयोगो । २०. रा. दुर्ल्लभः । २१. रा. दातव्यो । २२. रा. देयो । २३. रा. श्रीषड्विद्यागमे । २४. रा. नास्ति ।

।। अथ द्वात्रिंशत्पटलः ।।

मन्त्रादौ तव बीजपूर्वकमथ क्लीं ब्लूं म्लूं[1] सौं[2] ग्लौं जप[न्][3],
तावद्[द्]ध्यानपराय[णः][4] प्रतिदिनं पीत्ता(ता)क्षमालाधरः।
साध्याकर्षणवश्यमाशु बगले साध्यस्य शीघ्रं भवेत्,
प्रेताढ्यासनपूर्विके[5] विवसने तत्प्रेमभूमौ निशि ।।१।।

क्रौञ्चभेदन उवाच—

नमः पापविदूराय नमस्ते चन्द्रशेखर।
बगलां[6] चोपसंहारविद्यां वद सुपावनी[म्] ।।२।।

ईश्वर उवाच—

ब्रह्मास्त्रस्तम्भिनी काली विद्या चास्त्रसुपावनी[7]।
तस्यास्तत्स्मरणादेव[8] बगला शान्तिमाप्नुयात् ।।३।।
तद्विद्यां च प्रवक्ष्यामि शान्तौ[9] तच्छृणु[10] षण्मुख।
उच्चरेच्छक्तिवाराहं वाराहं[11] तदनन्तरम् ।।४।।
वाग्बीजं च ततो(थो)च्चार्य भुवनेशीं[12] ततः परम्।
महामायां[13] ततो(थो)च्चार्य श्रीबीजं तदनन्तरम् ।।५।।
कालीशब्दद्वयं[14] चोक्ता(क्त्वा) महाकालीपदं[15] वदेत्।
एहि शब्दद्वयं चोक्त्वा कालरात्री(त्रि)पदं वदेत् ।।६।।
स्फुरद्वयं समुच्चार्य्य प्रस्फुरद्वितयं[16] लिखेत्[17] ।।७।।
स्तंभनास्त्रपदं चोक्त्वा शमनीपदमुच्चरेत्।
हुं फट् स्वाहा-समायुक्तं मन्त्रमेवं समुद्धरेत्[18] ।।८।।
पंचाशदूर्ध्वं मंत्रस्य[19] वर्णत्रयविभूषितम्[20]।
ब्रह्मास्त्रस्तंभिनीकालीमन्त्रमेतन्न संशयः ।।९।।
पलाशमूलमाश्रित्य लक्षमेकं जपे[त्]स्मयः[21]।
तर्प्पयेत्तद्दशांशेन[22] कर्पूरमिश्रितं जलैः[23] ।।१०।।

---

१. रा. नास्ति। २. रा. सौः। ३. रा. जपे। ४. रा. ०परायणं। ५. रा. प्रेताध्यासन०। ६. रा. बगला। ७. रा. चास्त्रे सु। ८. तस्य स्मरणमात्रेण। ९. क. सान्तं। १०. रा. च शृणु। ११. रा. हुङ्कारं। १२. रा. भुवनेशं। १३. रा. मम मायां। १४. रा. कालि०। १५. रा. महाकालि०। १६. रा. महामोहद्वयं। १७. रा. वदेत्। १८. रा. समुच्चरेत्। १९. रा. मन्त्रस्तु। २०. रा. नवकेन विभूषितः। २१. रा. जपेन्नरः। २२. ०तद्दशांशशं च। २३. रा. जलम्।

पलाशपुष्पैर्जुहुयाच्चतुरस्रे च कुण्डले(के) ।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पुत्र[1] सहस्रं शतमेव वा ।११।।
मन्त्रसिद्धिमवाप्नोति देवता च प्रसीदति ।
ब्रह्मा ऋषिश्च छन्दोऽस्यं(स्य) गायत्री समुदाहृतम्[2] ।।१२।।
देवता कालिका नाम[3] स्तंभनास्त्रविभेदिनी[4] ।
ध्यानं यत्नात् प्रवक्ष्यामि मन्त्रभेदेन पुत्रक ।।१३।।
कालीं करालवदनां कलाधरधरां[5] शिवाम् ।
स्तम्भनास्त्रैकसंहारीं ज्ञानमुद्रासमन्विताम्[6] ।।१४।।
वीणापुस्तकसंयुक्तां कालरात्रिं नमाम्यहम् ।
बगलास्त्रोपसंहारीदेवतां[7] विश्वतोमुखीम्[8] ।।१५।।
भजेऽहं कालिकां देवीं जगद्वशकरां[9] शिवाम् ।
एवं ध्यात्वा तु मन्त्रज्ञः प्रजपेच्छुद्धि(द्ध)[10] मानसः ।।१६।।
वक्ष्येऽहं चोपसंहारक्रमं लोकोपकारकम्[11] ।
जम्बीरफलमादाय मन्त्रयेच्छतमादरात् ।।१७।।
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय निद्रान्ते च कुमारक ।
एवं चार्कदिनं कृत्वा जिह्वास्तम्भादिकृत्त्रिमम् ।।१७।।
सद्यो नर्मा(र्म)ल्यमाप्नोति तमः सूर्योदये यथा ।
रवौ श्वेतवचा[12] ग्राह्यं मन्त्रयेच्छतमादरात् ।।१९।।
प्रातःकाले भक्षयित्वा त्रिसहस्रं मनुं जपेत् ।
वाचं[13] मुखं पदं चैव 'जिह्वां बुद्धीन्द्रियाणि च'[14] ।२०।।
स्तम्भितं मन्त्रयोगेन तत्सर्वं शान्तिमाप्नुयात् ।
ताम्रपात्रे समादाय नदीजलमकल्मषम्[15] ।।२१।।
शतवारं मन्त्रयित्वा प्राशयेच्छान्तिमाप्नुयात्[16] ।
गोमूत्रं चैव संगृह्य मन्त्रयेच्छतमादरात् ।।२२।।

---

१. रा. पश्चात् । २. रा. समुदाहृतः । ३. रा. नाम्नी । ४. रा. स्तम्भनास्त्रकर्भेदिनी । ५. रा. कलाधारधरां ।
६. रा. स्तंभनास्त्रैकसंहारि वंदेहं भद्रकालिकाम् ।।१४।।
स्तंभनास्त्रोपसंहारि ज्ञानमुद्रासमन्वितम्(ताम्) ।
७. रा. बगलास्त्रोपसंहारि विश्वतो । ८. रा. देवतामुखी । ९. रा. जाड्यवश्यकरी । १०. रा. ०द्सिद्धि । ११. रा. कीलोपकारकम् । १२. रा. श्वेतबला । १३. रा. वाचा । १४. रा. जिह्वाबुद्ध्यादिकान्यपि । १५. रा. श्लोकार्द्धमिदं नास्ति । १६. रा. तु षण्मासं ।

एवं कृत्वा जपेन्मन्त्रं[1] उन्मादं[2] शान्तिमाप्नुयात् ।
मन्त्रयेदारनालं च प्रातः प्रातः पिबेन्नरः ॥२३॥

मण्डलज्वररोगं च नाशमाप्नोति निश्चितम् ।
'अष्टोत्तरं मन्त्रयित्वा धारोलबं'[3] पिबेन्नरः ॥२४॥

गर्भस्तंभनदोषं च मण्डलाच्छान्तिमाप्नुयात्[4] ।
भस्म च मन्त्रयेत्[5] प्रातः त्रिसप्त त्रिशतेन[6] वा ॥२५॥

तक्रेण[7] सहितं पीत्वा त्रिसहस्रं दिने दिने ।
बगलामंत्रयोगेन एतत्प्राणसमुद्भवः[8] ॥२६॥

नाशयेदाशु तत्सर्वं तुलराशिमिवानलः ।
यक्षधूपं[9] समानीता[10] मंत्रयेच्छतमादरात् ॥२७॥

धूपयेत्तेन सर्वाङ्गं दशरात्रं कुमारक ।
यक्षधूपोद्भवं[11] चैव प्रयोगं चैव[12] कृत्रिमम् ॥२८॥

तत्क्षणान्नाशमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।
रवौ ब्राह्मीं समादाय छायाशुष्कं समाचरेत्[13] ॥२९॥

मन्त्रयेत् त्रिसहस्रं तु भक्षयेत् प्रातरेव च ।
एतद्विद्यां जपेन्नित्यं त्रिसहस्रं कुमारक ॥३०॥

बगलास्त्रकृतं[14] यद्यत् प्रयोगं दुर्लभम् भुवि ।
तत्सर्वं नाशमाप्नोति मासं मण्डलमात्रतः ॥३१॥

ब्राह्मीरसं समादाय मन्त्रयेच्छतधा पुनः ।
शर्करासहितं पीत्वा सहस्रं जपमाचरेत् ॥३२॥

नानाकृत्रिमदोषं च बगलामन्त्रतः[15] कृतम् ।
अमङ्गल्यो [द्] भवं नाथ[16] भूतले यदि[17] दुर्लभम् ॥३३॥

---

१. रा. तु षण्मासं । २. रा. उन्मादः । ३. रा अष्टोत्तरशतं मन्त्रं धारोष्णं च । ४. रा. मण्डलान्नाशमा० । ५. रा. मंत्रयन् । ६. रा. सप्तमेव । ७. रा. मन्त्रेण । ८. रा. यद्यद्वणसमुद्भवम् । ९. रा. वृक्षधूपं । १०. रा. समानीय । ११. रा. वृक्षधूपोद्भवं । १२. रा. नाश । १३. रा. समाहरेत् । १४. रा. बगलाविकृतं । १५. रा. गर्भे वा यन्त्रितं । १६. रा. बाधं । १७. रा. यत्तु ।

मण्डलान्नाशमाप्नोति तमः सूर्योदये यथा ।
एतद्विद्या साम्प्रदायं[1] गुरूक्तान्[2] लब्धमन्त्रवान् ॥३४॥
लक्षमेकं जपेन्मन्त्री[3] प्रयोगं नाशमाप्नुयात् ।
अशक्तश्च स्वयं पुत्र 'कुर्वते ब्राह्मणामपि'[4] ॥३५॥
द्विगुणां जपमाप्नोति तमः सूर्योदये यथा ।
एतद्विद्या सम्प्रदायं वद्दये ब्राह्मणानपि ॥३६॥[5]
द्विगुणं जपमात्रेण सर्वशान्तिमवाप्नुयात् ।
एतद्विद्यां विना पुत्र कर्लौं च बगलामुखि(खीं) ॥३७॥
प्रयोगशान्तिर्न[6] भवे[न्] मंत्रयन्त्रौषधादिभिः ।
सप्तकोटिमहामंत्रप्रयोगेषु च पुत्रक ॥३८॥
एतद्विद्यापुरश्चर्य्या नाशयेदाशु[7] निश्चयम्[8] ॥
नमः श्रीकालिकादेव्यै कालरात्र्यै नमो नमः ॥३९॥[9]
उपसंहाररूपिण्यै देव्यै नित्यं नमो नमः[10] ॥४०॥

इति श्रीषड्विद्यागमे सांख्यायनतंत्रे 'प्रयोगसंहारं नाम'[11] द्वात्रिंशत्पटलः ॥

॥ अथ त्रयस्त्रिंशत्पटलः ॥

पीनोत्तुङ्गजटाकलापविलसद्बालेन्दुसच्छेखराम्,[12]
बिभ्राणां शितशान्तकुम्भमुकुटां[13] (टं)नेत्रत्रयालङ्कृताम् ।
शब्दब्रह्ममयीं त्रिलोकजननीं शक्तिं परां शाम्भवीम्,;
देवीश्रीबगलां सुरासुरवरैरभ्यर्चितां भावयेत्[14] ॥१॥

क्रौञ्चभेदन उवाच—

नमः शिवाय साम्बाय ब्रह्मणेऽनन्तमूर्त्तये ।
वद मे चोपसंहारं यंत्रं लोकोपकारकम् ॥२॥

---

१. रा. समादाय । २. रा. गुरुक्तो । ३. रा. ०मन्त्रं । ४. रा. प्रार्थयेद्ब्राह्मणानपि । ५. रा. पद्यमिदं नास्ति । ६. घ०शान्ति न । ७. घ. नाशयेदृणं । ८. घ. निश्चयः । ९. रा. पद्यार्द्धमिदं नास्ति । १०. रा. पद्यार्द्धमिदं नास्ति । ११. रा नास्त्ययमंशः । १२. रा. ०द्बालेन्दु० । १३. रा. सित० । १४. घ. श्रीबगलां ब्रह्मास्त्रवीसुरनरैरभ्यर्चितामाश्रये ।

ईश्वर उवाच—

कपिलानवनीतं च कदलीपत्रमध्यत:[1] ।
लिप्त्वा[2] मंत्रं[3] लिखेत्तत्र 'कृत्वा पूजां'[4] च साधकः ॥३॥
Aषट्कोणं चाष्टकोणं च वृत्तं भूपुरमेव च ।
षट्कोणकर्णिकायां व(च)षट् बीजानि मनोर्लि[खे]त् ॥४॥
शिष्टाक्षराणि कोणेषु ब्रह्मास्त्रस्तम्भिनीमनुः ।
अष्टपत्रे लिखेन्मंत्रं ताक्ष्यमालामनुस्तथा ॥५॥A
कोऽयंस्ताक्ष्यमनुश्चेति वक्ष्येऽहं मन्त्रनायकम् ।
B आद्यवर्णं समुच्चार्य्यं ताक्ष्र्यबीजं ततः परम् ॥६॥
ॐ नमो पदमुच्चार्य्यं पश्चाद् भगवते पदम् ।
ताक्ष्यबीजं पक्षिराजायोक्त्वा ताक्ष्यं ततः परम् ॥७॥
सर्वंशब्दं ततो (थो) च्चार्यं अभिचारपदं वदेत् ।
ध्वंसकाय पदं क्षीमों हुँ फट् स्वाहा-समन्वितम् ॥८॥ B
ताक्ष्यंस्य मालामन्त्रश्च द्वात्रिंशद्वर्णसंयुतम् ।
अष्टपत्रे वेदवेदवर्णान् पूर्वादितो लिखेत् ॥९॥[5]

---

१. रा. कदलीपर्णके तथा । २–३. घ. लिप्य यंत्रं । ४. रा. यन्त्रमध्ये ।

A-A चिह्नान्तर्गतांशस्थाने रा॰ पुस्तके निम्नांश एवोपलभ्यते—

षट्कोणमध्ये विलिखेद्ब्रह्मास्त्रस्तंभिनीमनुः ।
अष्टपत्रे लिखेन्मन्त्रं ताक्ष्यमालामनुस्तथा ॥

B-B चिह्नान्तर्गतांशस्थाने रा॰ पुस्तके निम्नाङ्कितः पाठभेदो दृश्यते—

अन्त्यवर्णं समुच्चार्यं चतुर्थस्वरपूर्वकम् ॥४॥
बिन्दुना भूषितं पुत्र ताक्ष्यं एकाक्षरी तथा ॥
ॐकारबीजमुच्चार्यं ताक्ष्यबीजं ततः परम ॥
ॐ नमो पदमुच्चार्यं ततो भगवते पदम् ।
पक्षिराजा उच्चार्यं अभिचारपदं वदेत् ॥
ध्वंसकाय पदं चोक्त्वा हुं फट् स्वाहासमन्वितम् ॥६॥

मंत्रः—ॐ क्षीं नमो भगवते पक्षिराजाय अभिचारादिसकलकृत्रिमध्वंसकाय हुं फट् स्वाहा ॥

५. श्लोकस्यास्य रा॰ पुस्तके निम्नोऽयं पाठभेदः—

मालामंत्रं ताक्ष्यविद्या षड्विंशद्वर्णसंयुता ॥
अष्टपत्रे लिखेत्तत्र प्रादक्षिण्यक्रमेण तु ॥७॥

प्राणप्रतिष्ठां यंत्रस्य[1] आद्यवृत्ते लिखेत् सुत ।
तदुपरि लिखेद् वर्णान्[2] पञ्चाशल्लिपिसंयुतान्[3] ॥१०॥
पाशाङ्कुशं च विलिखेद् भूपुरेषु यथाक्रमम् ।
अष्टकोणे लिखेद् वर्णान्[4] वज्रान्ते वर्म फट् तथा ॥११॥
एवं लिखित्वा यंत्रं च पूजयेन्मानसेन तु ।
एवं कृत्वा तु तत्सर्वं नवनीतं कुमारक ॥१२॥[5]
भक्षयेद् बदरीमात्रं सायं प्रातस्तु बुद्धिमान् ।
देवतावेशमतुलं मन्त्रयन्त्रादिकृत्त्रिमैः[6] ॥१३॥
शल्यदारुमयं 'तत्र प्रयोगं बगलाश्च यत्'[7] ।
नाशयेन्मण्डलादेव शि [व] स्य वचनं यथा ॥१४॥
एतद्यन्त्रं हृदि ध्यायेद् दुःखकाले सुबुद्धिमान् ।
दशरात्राद् व्यपोहंतु(ति) दारुणैरपि[8] कृत्रिमैः[9] ॥१५॥
रौप्ये वा स्वर्णपट्टे वा लिखेद् यंत्रमिमं बुधः[10] ।
पूजयेद् रक्तपुष्पेण[11] षोडशैरुपचारकैः ॥१६॥
कण्ठे वा बाहुमूले वा शिखायां वा कुमारक ।
बंधयित्वा वाभिचारं नाशमाप्नोति निश्चतम्[12] ॥१७॥
नागवल्लीदलेनैव[13] एतद्यंत्रं कुमारक ।
चूर्णेन विलिखेत् सम्यक् पूर्वं ताम्बूलचर्वणम् ॥१८॥
एवं कुर्यात् प्रातरेव तद्वत् सायं समाचरेत् ।
मासत्रयं[14] चरेदेवं कृत्त्रिमं हरते नृणाम् ॥१९॥[15]
कुर्यात् कृत्त्रिमरोगेण पीडिताय कुमारक ।
तत्कार्यगौरवं चैव लाघवं चावलोकयेत् ॥२०॥[16]
पक्षं वाथ त्रिसप्ताहं[17] मासं वा मण्डलं तथा ।
यथा व्याधिन्नियुक्तं[18] च तावत्कालं कुमारक ॥२१॥

१. रा. मन्त्रं तु । २. रा. ०वर्णं । ३. रा. ०द्वर्णसंयुतम् । ४. रा. वज्र । ५. श्लोकोयं रा. पुस्तके नास्ति । ६. रा. कत्रिमः । ७. '–' रा. यच्च बगलायोगमात्रतः । ८. रा. दारुणानपि । ९. रा. कृत्त्रिमान् । १०. रा. बुधैः । ११. रा. रक्तपुष्पैस्तु । १२. रा. निश्चयात् । १३. रा. ०चैव । १४. रा. मासमात्रं । १५. रा. पुस्तकेऽतः परं विशेषोऽयं श्लोको दृश्यते—

स्तम्भनास्त्रोपसंहारं मन्त्रेण च कुमारक ।
मार्जनं बिल्वपत्रेण आरोहादवरोहकम् ॥१७॥

१६. रा.० लोकयन् । १७. रा. त्रिसप्ताथ । १८. रा. व्याधिविमुक्तं ।

अनेन(नया) विद्यया पुत्र मार्जनं मुनिसंमतम्[1] ।
अथवा मन्त्रितं तोयं[2] सद्यः कृत्रिमनाशनम् ॥२२॥

भूपुरं वृत्तयुग्मं च तन्मध्ये च कुमारक ।
पञ्चकोणं लिखेत् सम्यक् तन्मध्ये चन्द्रमण्डलम् ॥२३॥

इन्द्रमध्ये[3] लिखेद् विद्यां कृत्रिमघ्नीं[4] च कालिकाम् ।
मनुरेव लिखेत् सम्यक् स्यष्टवर्णेन[5] संयुतम् ॥२४॥

पञ्चकोणे[6] लिखेन्मन्त्रं[7] पञ्च ब्रह्माख्यमेव च ।
आद्यपत्रे लिखेन्मन्त्रं[8] प्राणस्थापनकं तथा ॥२५॥

द्वितीये विलिखेत् सम्यक् पञ्चाशद्वर्णमादरात् ।
पाशाङ्कुशं वि लिखेद् भूपुरेषु चयथाक्रमम् ॥२६॥

एतद्यन्त्रं लिखेद् भूर्ये कसूर्यां(स्तूर्या) क्रौञ्चभेदन ।
यन्त्रे[9] प्राणान्[10] प्रतिष्ठाप्य पञ्च ब्रह्ममनुं जपेत् ॥२७॥

त्रिसहस्रं सहस्रं वा त्रिशतं शतमेव च ।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चाद् वित्ताशाठ्यं न कारयेत् ॥२८॥

तद्यंत्रधारणादेव कृत्रिमादिरनेकशः[11] ।
तत्क्षणान्नाशमाप्नोति जीवेद्[12] वर्षशतं तथा ॥२९॥

एतद्यन्त्रं[13] हृदि ध्यात्वा मानसेनैव पूजयेत् ।
त्रिसप्तदिनमात्रेण नानाकृत्रिमनाशनम् ॥३०॥

ताम्रपात्रे जलं ग्राह्यं श्रीसूक्तेनैव मन्त्रयेत् ।
शतं वार्द्धशतं वाथ त्रिसप्तमथ पुत्रक ॥२१॥

तुलसीमञ्जरीभिश्च नार्जयेद् रोगपीडितः[14] ।
आरोहादवरोहेण ऋचान्ते मार्जनं तथा ॥३२॥

त्रिकालमेककालं वा मार्जयेद् ध्यानपूर्वकम् ।
त्रिमोथं[15] च यद्रोगं नाशमाप्नोति निश्चितम् ॥३३॥

श्रीसूक्तेनैव जिह्वायां मार्जयेत् तुलसीदलैः ।
त्रिसप्तं[16] प्रातरुत्थाय जिह्वास्तं[भ]नशान्तिकृत् ॥३४॥

---

१. रा. मुनिसंवृतम् । २. रा. तोयैः । ३. रा. चन्द्रमध्ये । ४. रा. कृत्रिमघ्ने । ५. रा. अष्टवर्गेण । ६. रा. पञ्चवर्गेण । ७-८. रा. ०न्मंत्रैः । ९. रा यंत्रेण । १०. प्राणं । ११. ०रनेकधः । १२. घ. जपेद् । १३. रा. एवं यंत्रं । १५ रा. रोगपीडिते । १६. कृत्रिमोथं (यं) । १७. रा. त्रिसहस्रं ।

गोक्षीरं प्रातरुत्थाय श्रीसूक्तेनैव मंत्रयेत् ।
दशवारं ध्यानपूर्वं तत्क्षीरं प्राशयेन्नरः'[१] ॥३५॥

कौटिल्यस्थापनं चैव मार्जयेन्मूलविद्यया ।
पुत्तल्यादिप्रयोगं च नाशमाप्नोति निश्चितम् ॥३६॥

ताम्रपात्रे जलं शुद्धं मंत्रयेदर्कसंख्यया ।
तज्जलप्राशनादेव बुद्धिभ्रंशो[२] विनश्यति ॥३७॥

उष्णोदकं ताम्रपात्रे त्रिसप्तमभिमंत्रयेत् ।
नानाशूलं च हृद्रोगं नाशमाप्नोति पुत्रक ॥३८॥

इति श्रीषड्विद्यागमे[३] स्तंभनास्त्रोपसंहारं[४] नाम त्रयस्त्रिंशत्पटलः ।

॥ अथ चतुस्त्रिंशः पटलः ॥

विश्वेश्वरी विश्ववन्द्या विश्वानन्द स्वरूपिणी ।
पीतवस्त्रादिसन्तुष्टा[५] पीतद्रुमनिवासिनी ॥१॥[६]

क्रौञ्चभेदन उवाच

विश्वाराध्य भवानीश विश्वोत्पत्तिविधायक[७] ।
'ब्रूहि मे कृपया तात सकलागमकोविद'[८] ॥२॥

ईश्वर उवाच—

समस्तकर्म्मणां[९] ध्वंसे सर्वोपद्रवनाशने ।
जातिस्तम्भे मनःस्तम्भे क्रूरकर्मनिवारणे[१०] ॥३॥

अष्टवेतालशमने सर्वभैरवनाशने[११] ।
मातृणां शान्तिजनकं स्तम्भनं जलरक्षसाम् ॥४॥

'देवदानवदैत्यारीन्(रि)शमने भ्रमनाशने'[१२] ।
समस्तोपद्रवध्वंसे पूतनादिविनाशने[१३] ॥५॥

---

१. रा. पूर्ववत्क्षीरं प्राशयेन्नर तत्परः । २. रा. बुद्धिभ्रान्तो । ३. रा. पुस्तके 'सांख्यायनतन्त्रे' इत्यधिकः पाठः । ४. रा. उपसंहारप्रयोग । ५. रा. पीतवस्त्राथ० । ६. ख. पुस्तके—

ईश्वरी विश्ववंद्या च विश्वानन्तररूपिणी ।
पीतवस्तुदय तुष्टा पीतं हृदयनिवाशिनीम् ॥

७. ख. ०गुणाकर । रा. ०कुमारक । ८. ख. रा. पद्यार्द्धमिदं नास्ति । ९. ख. समस्ते० । १०. ख. परकृत्यानिवारणे । ११: रा. सर्वभयविनाशिनीं । १२. ख. देवदानवदैत्यादिशमनोऽत्र विनाशने । १३. ख. पूजनादिविचारणे ।

कपटादिविनाशार्थे[1] प्राप्ते प्राणस्य सङ्कटे ।
विंशन्मनुविनाशार्थे[2] षट्त्रिंशद्रोगनाशने[3] ॥६॥

सूचिप्रयोगविध्वंसे महाशस्त्रास्त्रपातने ।
शतिस्तम्भे[4] मतिस्तम्भे[5] सूर्य्याग्निस्तम्भनेषु[6] च ॥७॥

नानारोगविनाशार्थं नानाक्लेशनिवारणे ।
रणे राजकुले शान्तौ[7] प्रयोगनाशनेऽपि च ॥८॥

परप्रयोगविध्वंसे परकृत्यानिवारणे ।
कृत्यावेशस्तम्भनोऽयं[8] प्रयोगं षण्मुखाचर[9] ॥९॥

अनेन योगवर्य्येण सर्वदोषनिवारणम् ।
शृणु षण्मुख तद्योगं सर्वयोगोत्तमोत्तमम् ॥१०॥

'पीतावरणभूषी च पीतवस्त्रद्वयान्वितः'[10] ।
पीतयज्ञोपवीतस्तु महापीताश(स)ने[11] स्थितः[12] ॥११॥

'ज्वालामुख्यभिधं बाणं त्रिशतं प्रजपेत् सुत'[13] ।
'हरिद्राक्षमणि पीत'[14] सर्वकार्यं जपादिकम् ॥१२॥

वडवानलनामानं बाणमादौ जपेच्छतम् ।
उल्कामुख्यभिधं[15] बाणं द्विशतं प्रजपेत् सुत ॥१३॥

ज्वालामुख्यभिधं बाणं त्रिशतं प्रजपेत् नरः[16] ।
जातवेदमुखीबाणं 'वेदसंख्याशतं'[17] सुत ॥१४॥

बृहद्भानुमुखीबाणं जपेत् पञ्चशतं सुत ।
'य एकादि'[18] महाविद्यां कुल्लुकादिसमन्विताम्[19] ॥१५॥

नेत्रलक्षं जपेन्मन्त्रं क्रूरकर्मादिनाशने[20] ।
हरिद्रायां[21] चरेद्धौ(द्धो)मं काम्यं गौरवमिच्छति ॥१६॥

---

१. ख. क्रूरग्रहविनाशाये । २. ख. विशनष्टि विनाशार्थे । ३. ख. षट्त्रिंशद्वाण० ।
४. ख. मणिस्तम्भे । ५. ख. रतिस्तम्भे । ६. ख. ०स्तम्भनेऽपि । ७. ख. शत्रौ ।
८. ख. कृत्याविष० । ८. ख. षम्मुखावरः । रा. षण्मुखाचरेत् ।
९. '—' ख. पीताभरणभूषःढया पीतवस्त्रद्वयान्वितः ।
११. ख. महापीतासुनि । १२. ख. सुत । १३. '—' अयमंशो घ. रा. पुस्तकयो र्नास्ति ।
१४. ख. हरिद्राक्षेण मणिना । १५. घ. उल्कामुखाभिधं । १६. ख. सुत । रा. ततः ।
१७. ख. तदन्ते संस्मरेत् । १८. ख. एकाक्षरी । १९. घ. कुमार्केदि० । २०. ख. क्रूरकर्मण० । रा. कुकर्मादि० । २१. ख. हरिद्रया ।

शतं त्रिशतकं पुत्र हुनेद्दशसहस्रकम्[1] ।
'हरिद्राघृतसंमिश्रैः क्रूरकर्मविनाशनम्'[2] ॥१७॥
'हरिद्राहोममात्रेण क्रूरकर्मण(वि)नाशनम्'[3] ।
'तर्प्पणात्तालनीरेण हेतुना'[4] मार्जयेत् सुत ॥१८॥
'सुवासिनी ब्राह्मणांश्च'[5] 'वगलार्चां कुमारक'[6] ।
सौभाग्यार्चाक्रमेणैव' 'ब्राह्मीमुद्रां च'[7] धारणात् ॥१९॥
'बन्धनं त्रिपुरश्चैव दीपिका तस्य'[8] योजनात् ।
'कृत्यावश्यस्तम्भनाख्यो(ख्यं) 'योगं सर्वं भयापहम्'[9] ॥२०॥
त्रैलोक्यविजयं नाम विजयं[10] मण्डलं तथा ।
पञ्चास्त्रमूलपठनाद् गारुडो जायते सुत ॥२१॥
पीताशी पीतवाणी च पीतशय्यासमन्वितः ।
पीताम्बरादिसंयुक्तः पीतपूजापरायणः ॥२२॥[11]
पञ्चक्रमसमायुक्तां[12] (क्तः) सिद्धयोगी[13] नरः सुत ।
ग्रसिनी सर्वविद्यानां रक्षणी सकलापदाम् ॥२३॥
मर्दिनी[14] सर्वशत्रूणां नाशिनी सर्वरक्षसाम् ।
उपसंहारयोगेषु योगो यं भवति[15] ध्रुवम् ॥२४॥
'अन्ययोगसमारम्भं कृतं सिद्धयति वा न वा'[16] ।
'योगमेवं समासाद्य सिद्धभोगी'[17] नरः कलौ ॥२५॥
'अघोराश्च पाशुपती संहारो मोहिनोपि(ति) च'[18] ।
षट्त्रिंशदस्त्रसंस्तम्भः पञ्चास्त्रेण प्रजायते ॥२६॥
पञ्चास्त्रशस्त्रविज्ञानी पाञ्चभौतिकसिद्धियुक् ।
आद्यस्तु रणबाणास्त्रं[19] रणादिस्तम्भने जपेत् ॥२७॥

---

१. रा. ०सहस्रवान् । ख. सहस्रं त्रिसहस्रकम् । २. ख. हुनेद्दशसहस्रं वा हरिद्रा० घृतमिश्रितैः ॥ ३. '–' अयमंशो नास्ति घ. रां. पुस्तकयो । ४. '–' ख. तर्पनाल्लनिरर्णय-चणहेतु । ५. ख. ब्राह्मणान् सुवासीनां । ६. '–' ख. भक्ता वाला वा च कुमारिकाम् । ७. ख. ब्राह्मीमुद्राभि । रा. ब्राह्मीमुद्रादि । ८. '–' ख. बन्धनान्निष्ठुरश्चैव दीपकास्त्रस्य । ९. '–' ख. रा. कृत्याविषस्तम्भनाख्यो योगः सर्वविषापहः ॥
१०. ख. कवचं । ११. श्लोकोऽयं ख. पुस्तके नास्ति । १२. ख. ० समासक्तः । १३. ख. सिद्धिभागी । रा. ०भोगी । १४. ख. मथिनी । १५. ख. रा. चलति । १६. '–' ख. अन्ययोगः शरभवत् कृते सिद्धमानवः ।
१७. ख. रा. '–' योगमेनं समासाद्य सिद्धिभागी । १८. ख. रा. अघोरास्त्रं पाशुपते-संहारे मोहनेऽपिच । १९. ख. [illegible]बाणो ।

उल्कामुखीद्वितीयास्त्रं 'स्तम्भनं भुवनत्रये'[1] ।
ज्वालामुखीतृतीयास्त्रं स्तम्भनं ऋषिदैवतैः ॥२८॥
जातवेदमुखीबाणो ब्रह्मविष्ण्वादिरक्षणे[2] ।
'सर्वकर्मस्तम्भने च'[3] चतुर्थं प्रजपेत् सुत ॥२९॥
बृहद्भानुमुखीबाणं[4] पञ्चमं[5] परिकीर्त्तितम्[6] ।
षट्पञ्चकोटिचामुण्डा कालीकोटिशतं सुत ॥३०॥
सपादकोटित्रिपुरा पञ्चाशत्कोटिभैरवाः ।
नारसिंहा यातुधानाः पूतनाः कोटिचेटकाः[7] ॥३१॥
समस्तस्तम्भनं पुत्र पञ्चमेन प्रजायते ।
हस्ते सम्पाद्य[8] 'पञ्चास्त्रं शासनास्त्रं[9]' स्मरेन्मुखे ॥३२॥
स कल्पमुखभागी[10] स्यान्नात्र कार्या विचारणा ।
त्रैलोक्यविजयाख्यं च स्मरेदस्त्रेन्द्रमुत्तमम् ॥३३॥
यथोक्तकुण्डेषु हुनेद् वेदिकायां विशेषतः ।
चुल्ल्यां शकट्यां प्रेताग्नौ पञ्चस्थाने हुनेदपि ॥३४॥
चत्वरे सर्वकार्यार्थं होमयेदुक्तमार्गतः ।
'सकूर्चं स्रुक्स्रुवौ चैव तद्धशिव(वि)श्च इति क्रमात्'[11] ॥३५॥
प्रणि(णी)ता प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थाली च षण्मुख[12] ।
सकलं[13] पूर्णपात्रं च 'ब्रह्मचर्येण योगतः'[14] ॥३६॥
क्रमात् सर्वं तु सम्पाद्य होमं कुर्यात् प्रयत्नतः[15] ।
'क्रूरकर्माणि नश्यन्ति'[16] तालकेन हुनेत् सुत ॥३७॥
पीतपुष्पैश्च जुहुयात् क्रूरकर्मविनाशने[17] ।
'क्रूरतर्पणयोगेन क्रूरविघ्ननिवारणम्'[18] ॥३८॥

---

१. '–' ख. त्रिलेकीस्तम्भने जपेत् । २. ब्रह्मविद्या० । ३. ख. सर्वकर्मणसंस्तम्भे । रा. सर्वकर्माणि स्तम्भे च । ४. ख. ०बाणः । ५. ख. पञ्चमः । ६. ख. परिकीर्तितः । ७. ख. कटपूतनाः । रा. ०पूतनाः । ८. ख. संधार्य । ९. '–' ख. चापास्त्रं प्रसितास्त्रं । १०. ख. कल्पसुखभागी । रा. संकल्पमुखिभोगः । ११. '–' ख. –समित्कुशा स्रुकसुचौ च त्विध्मावर्हीति च क्रमात् । १२. ख. सन्मुखाः । १३. ख. कलशं । १४. ख. ब्रह्मचर्यं तु जापकः । रा. ब्रह्माचार्येण योगकः । १५. ख. प्रयोगवित् । १६. ख. रा. क्रूरकर्माणिनिर्नाशे । १७. ख. कूटकृत्त्रिमनाशने । १८. '–' ख. –पीतेन तर्पयेदेव क्रूरग्रहनिवारणम् । रा. क्रूरे तर्पणया देवी० ।

इति संक्षेपतः पूर्वं[1] किमन्यं[2] श्रोतुमिच्छसि ।
इति श्रीषड्विद्यागमे साँख्यायनतन्त्रे चतुस्त्रिंशत्पटलः[3] ॥३४॥

॥ अथ पञ्चत्रिंशः पटलः ॥

योषिदाकर्षणासक्तां[4] फुल्लचम्पकसन्निभाम्[5] ।
दुष्टस्तम्भनमासक्तां[6] वगलां स्तम्भिनीं भजे ॥१॥

क्रौञ्चभेदन उवाच—

नमस्ते सर्वसर्वेश कर्पूरद्युतिसन्निभ[7] ।
योगिन्[8] सर्वादिसर्वज्ञ बीजभेदं वद प्रभो ॥२॥

ईश्वर उवाच—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वगलामन्त्रनिर्णयम् ।
षट्त्रिंशदक्षरी विद्या 'त्रिपुरे चैव तिष्ठति'[9] ॥३॥

सांख्यायनमते देव्या[10] नारायण[11] ऋषिः स्मृतः[12] ।
'गायत्रीछन्द उद्दिष्टं देवता वगलाह्वया'[13] ॥४॥

सांख्यायनमते देवि वामाचारविधिर्मतः ।
ब्रह्मयामलसम्मत्या ब्रह्मा चास्य ऋषिः स्मृतः ॥५॥[14]

'गायत्री छन्द आदिष्टं देवता सैव कीर्त्तिता'[15] ।
'जयद्रथाख्ययामले तु'[16] ऋषिर्नारद एव हि ॥६॥

छन्दादिकं पूर्ववत् स्यादिति संक्षेपतो मतम् ।
हारिद्रसंहितायां तु ऋषिर्नारायणो मतः ॥७॥

अनुष्टुप्छन्द आख्यातं[17] देवता वगलामुखी ।
सांख्यायनमतं देवी(वि)कलौ जार्गत्ति[18] केवलम् ॥८॥

मृत्युञ्जयजपं कृत्वा ततो विद्यां जपेत् सुत[19] ।
मृत्युञ्जयं विना देवो 'वगला नहि सिद्ध्यति'[20] ॥९॥

---

१. ख. प्रोक्त । २. ख. किमन्यच् । ३. ख. द्वात्रिंशति(एकत्रिंशत्)पटलः ॥३२। ४. घ. ०सक्त्यां । ५. ख. लसच्चम्पक० । ६. ख. ०स्तम्भनासक्तां । ७. रा. कर्पूरधवल ०। ८. ख. योगी । ९. '–' ख. त्रिधा च परितिष्ठिता । रा. ०चैव निष्ठिः । १०. ख. देवी । ११. ख. नारदोऽस्य । १२. ख. मतः । १३. '–' ख.—अनुष्टुप्छन्द आख्यातं देवता वगलाह्वया । रा. ०देवता सैव कीर्तिता । १४. पद्यमिदं घ. पुस्तके नास्ति । १५. घ. पुस्तके नास्ति पद्यार्द्धमिदम् । १६. ख. जयद्रथाख्ययामले । रा. जयद्रथयामले तु । १७. ख. त्रिष्टुप् छन्दः समाख्यातं । १८. ख. जाग्रति । १९. ख. सुधीः । २०. '–' घ. पुस्तके नास्ति ।

'ऋषिच्छन्दत्रितयकं मतभेदात् प्रदर्शितम् ।
बीजसंज्ञां प्रवक्ष्यामि'[1] सांख्यायनमुखोद्भवाम्[2] ॥१०॥

शिवबीजं[3] वह्नियुक्तं रतिबिन्दुसमन्वितम् ।
'वह्निशिवान्तराले तु'[4] भूबीजं योजयेत्(पेत्) सुत[5] ॥११॥

स्थिरमाया इति[6] प्रोक्ता विद्या त्वेकाक्षरी शुभा ।
अनया विद्यया देवि किन्न सिद्ध्यति भूतले ॥१२॥

पीतवासामते पुत्र[7] स्थिरमायां शृणु प्रिये ।
'स्थिरमायासमायुक्तं स्थिरं बीजमितीरितम्'[8] ॥१३॥

तदुद्धारं शृणु प्राज्ञ[9] गगनार्द्धं[10] समुद्धरेत् ।
स्थिरबीजं समुद्धृत्य रतिबिन्दुसमन्वितम्[11] ॥१४॥

स्थिरमाया 'द्वितीयां तु इन्द्रस्तं चन्द्रभूषितम्'[12] ।
'इयं शप्ता'[13] महाविद्या कीलिता[14] स्तम्भिता शिवे[15] ॥१५॥

रेफयोगान्महेशानि[16] निश्शप्ता[17] फलदायिनी ।
रेफयुक्तां जपेद्विद्यां 'फलसिद्धिर्न संशयः'[18] ॥१६॥

रेफहीनां जपेद्विद्यां कोटिजाप्यं[19] न सिद्ध्यति ।
'तस्माद्रेफेण संयुक्त'[20] स्थिरदा[21] परमेश्वरि ॥१७॥

संजपेच् 'च ततः पुत्र'[22] तस्य सिद्धिर्भविष्यति ।
लघुषोढां महाषोढां पञ्जरं न्यासमेव हि ॥१८॥

बगलामातृकान्यासं[23] 'कुल्लुकां च विचिन्त्य वै'[24] ।
सेत्वादिकामराजान्तं[25] न्यासमृत्युञ्जयं[26] जपेत् ॥१९॥

---

१. '—' चिन्हस्थोंऽशो घ. पुस्तके नास्ति । २. घ. रा. समुद्भवात् । ३. ख. जीव॰ बीजं । ४. ख. वह्निनशैवा॰ । रा. वह्निनः शि॰ । ५. ख. शिवे । ६. ख. त्वियं । ७. ख. देवि । ८. ख.—स्थिररूपा तु या माया स्थिरमाया तु सा मता ।
रा. स्थिररूपा तु मामाया स्थिरमाया समायतु ।
९. ख. प्राज्ञे । १०. ख. रा. गगनार्णं । ११. ख. ॰विभूषितम् । १२. ख. त्वियं देवि बिन्द्वर्द्धं चन्द्रभूषिता । १३. घ. रा. इमं समा । १४. घ. रा. कलिता । १५. घ. रा. सुत । १६. घ. रा. महा सैव । १७. घ. रा. नित्यभाक् । १८. ख. रेफहीनां न संजपेत् । १९. ख. ॰जाप्ये । २०. ख. तस्माद्रेफं तु संयोज्य । रा. तस्माद्रेफस्तु संयुक्तं । २१. ख. स्थिराघः । २२. ख, प्रयतो देवि । रा. स जपे शतदः पुत्र । २३. ख. ॰मातृकां न्यस्य । २४. घ. रा. सकृदाचरितं तदा । २५. घ. सत्वादि॰ । २६. घ. रा. न्यस्य ।

ततो वै प्रजपेद्विद्यां सदा जाग्रत्स्वरूपिणीम् ।
पीतवासामते देवि[2] पञ्चप्रेतगतां[1] स्मरेत् ॥२०॥

चतुर्भुजां वा द्विभुजां पीतार्णवनिवासिनीम् ।
सुधार्णवसमासीनां मणिमण्डपमध्यगाम् ॥२१॥

सांख्यायनमते देवि[4] संस्मरेद् यत्नतः शिवे[5] ।
सुन्दर्याः पश्चिमाम्नाये बगला परितिष्ठति[6] ॥२२॥

श्रीकाल्यामु(उ)त्तराम्नाये वगला पूज्यतां सुत ।

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे पञ्चत्रिंशत्पटलः[7] ॥३५॥

॥ अथ षट् त्रंशः पटलः ॥

योगिनीकोटिसंहितां पीताहारोपचञ्चलाम्[8] ।
वगलां परमां वन्दे[9] परब्रह्मस्वरूपिणीम् ॥१॥

क्रौंचभेदन उवाच–

चिदानन्दघनावास[10] 'वरमन्यं च मां वद'[11] ।
सर्व्वातीत परेशान 'सर्वभूतहिते रत'[12] ॥२॥

ईश्वर उवाच–

अथ 'स्कन्द प्रवक्ष्यामि'[13] 'सर्वकर्माणि नाशनम्'[14] ।
किं केन 'तामसं प्राप्तं'[15] किं केन शान्तिकारणम्[16] ॥३॥

कारणं तत्र केन स्यात् तत्सर्वं कथ्यते शृणु ।
आदौ मन्त्रं जपेत् पुत्र त्रिसहस्रमतन्द्रितः ॥४॥

ततः कवचमालम्ब्य[17] पुनर्म्मन्त्रं जपेत् तथा[18] ।
षट्त्रिंशद्वारमावर्त्य[19] पुरश्चरणमुच्यते ॥५॥

सर्वकर्माणि निर्नाशे[20] योगोऽयं परिकीर्त्तितः ।
अनुलोमविलोमेन द्वितीयो योग ईरितः ॥६॥

---

१. घ. रा. पुत्र । २. घ. मतां । ३. घ. रा. श्चरेत् । ४. घ. रा. पुत्र । ५. घ. रा. सुत । ६. ख. परिनिष्ठिता । रा. परितिष्ठताम् । ७. ख. त्रित्रिंश (द्वात्रिंश) पटलः । ८. घ. पीताहारोपि० । रा. पीतहारो० । ९. घ. रा. देवीं । १०. ख. ०धनस्वामिन् । ११. ख. सारमन्यन्महेश्वर । रा. सारमन्यं च मां वद । १२. ख. सर्वभूतहिताध्वर । १३. ख. षण्मुख मध्वामि । १४. ख. सर्वकर्माणनाशनम् । १५. ख. रा. नाम सम्प्राप्तं । १६. ख. ०कारकम् । १७. घ. रा. ०मारभ्य । १८. घ. रा. ततः । १९. घ. रा. षट्त्रिंशद्गुणमावृत्या । २०. ख. सर्वकर्माणनिर्नाशे ।

त्रिशतं च शतं चापि अष्टोत्तरसहस्रकम् ।
अष्टोत्तरशतं वापि कवचं पूर्ववद् भजेत्[1] ॥७॥
क्षुद्रकर्मणि[2] निर्नाशे योगोऽयं परिकीर्त्तितः ।
अनुलोमविलोमेन योगो वसुविधः स्मृतः ॥८॥
षट्त्रिंशद्वारमावर्त्य 'भवेदेवं विधिः सुत'[3] ।
कवचं प्रपठेदादौ मध्ये स्तोत्रं 'तु उच्चरेत्'[4] ॥९॥
शतावर्त्तनमात्रेण 'क्रूरकर्मणनाशनम्[5] ।
अनुलोमविलोमेन द्वितीयो योग ईरितः ॥१०॥
गायत्रीं कवचं पुत्र मन्त्रं स्तोत्रं पुनश्च सा ।
षड्विंशद्वारमावर्त्य षट्त्रिंशावर्त्तनं चरेत् ॥११॥
अनेन क्रमयोगेन सर्वकर्मविनाशनम्[6] ।
तारायां कालिकायां च 'छिन्नायामेवमेव तु'[7] ॥१२॥
अनुक्रमेण[8] सर्वत्र कुर्यादावर्त्तनं बुधः ।
मन्त्रमात्रकार्यमेतत्[9] सर्वदोषनिवारणम्[10] ॥१३॥
कवचं प्रथमं[11] बाणः कवचं च द्वितीयकम्[12] ।
कवचं च तृतीयं[13] स्यात् कवचं च चतुर्थकम्[14] ॥१४॥
कवचं पञ्चमं[15] बाणः कवचं प्रपठेत् कृती[16] ।
अनुलोमविलोमेन द्वितीयो योग ईरितः ॥१५॥
रणस्तम्भे 'सर्वकर्मान्निाशने मृत्युस्तम्भने'[17] ।
'प्राणरक्षादिव्यरक्षादेव्यो रक्षणकर्मणि'[18] ॥१६॥
योगोऽयं कथितः पुत्र बगलामन्त्र ईरितः[19] ।
शताक्षरीं जपेदादौ कवचं हृदयं तथा ॥१७॥

---

१. घ. रा. भवेत् । २. घ. रा. क्षुद्रकर्माणि । ३. ख. भवेदेकं पुनस्तथा । रा. भवेदेकं० ४. ख. पुनश्च तत् । ५. घ. रा. क्रूरकर्माणि० । ६. ख. सर्वकर्मणनाशनम् । ७. घ. रा. चिन्मयामेव एव च । ८. ख. मनुक्रमेण । ९. ख. मन्त्रयान्ते० । १०. ख. ०विनाशनम् । ११. ख. पञ्चमो । १२. ख. द्वितीयकः । १३. ख. तृतीयः । १४. ख. चतुर्थकः । १५. ख. रा. पञ्चमो । १६. घ. रा. ततः । १७. ख. मनःस्तम्भे सर्वकर्मणनाशने । १८. '–'ख.—
मृत्युस्तम्भे प्राणरक्षादिव्यरक्षणकर्मणि ।
१९. ख. काल्यादौ मन्त्रयोगतः । रा. कल्पादौ०

कवचं वेदवर्णं च कवचं चन्द्रवर्णकम्[1] ।
अनेन क्रमयोगेन 'योगः कर्मणनाशनः'[2] ॥१८॥

'एकाक्षरीं जपेदादौ'[3] कवचं प्रपठेद् यतः[4] ।
वेदाक्षरीं जपेदादौ कवचं प्रपठेत्तथा ॥१९॥

वेदाक्षरी[5] ततो जाप्यः कवचं तदनन्तरम् ।
षट्त्रिंशदक्षरी जाप्यः कवचं तदनन्तरम् ॥२०॥

वेदाक्षरीमनुपुरं[6] कवचं प्रथमं तथा ।
'कवचं च द्वितीयः स्यात् कवचं च तृतीयकः'[7] ॥२१॥

'कवचं च चतुर्थः स्यात् कवचं पञ्चमस्तथा'[8] ।
कवचं हृदयं[9] वाचं कवचं शतवर्णकम् ॥२२॥

'कवचात् कीलनं योगः त्रैलोक्यरक्षणाकरः'[10] ।
अनेन क्रमयोगेन त्रैलोक्यस्तम्भनं भवेत्[11] ॥२३॥

इन्द्रादिपदसंस्तम्भे समुद्रस्तम्भनेऽपि[12] च ।
'महाविद्यास्तम्भनं च सत्यं ब्रह्मास्त्रस्तम्भनम्'[13] ॥२४॥

'महापाशुपतादीनां स्तम्भने'[14] मृत्युपातने ।
महाब्रह्मास्त्रयोगो हि[15] गोपनीयं प्रयत्नतः ॥२५॥

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे 'ईश्वरषण्मुखसंवादे महादिव्यप्रयोगकथनं नाम'[16] षट्त्रिंशत्पटलः[17] ।

॥ अथ पञ्चत्रिंशः पटलः ॥

पीतवर्णसमासीनां पीतगन्धानुलेपनाम् ।
पीतोपहाररसिकां भजे पीताम्बरां पराम् ॥१॥

क्रौञ्चभेदन उवाच–

स्वामिन् सिद्धगु(ग)णाध्यक्ष समस्तगणपारग ।
रहस्यं सूचितं पूर्वं किन्न मह्यं प्रदर्शितम् ॥२॥

---

१. ख. षड्वर्णकः । २. घ. रा. योगकर्माणि नाशनः । ३. घ. जपेदादौ कवचं ४. ख. तथा । ५. घ. वेदाक्षरी । ६. ख. पञ्चचत्वारिंशन्मनु । रा. चत्वारिंशन्मनुपुरं ७. ८. '–' चिह्नस्थांशद्वयी घ. पुस्तके नास्ति । ९. ख. हृदया । १०. ख.—
कवचात्कीलयन मनु प्राणत्रैलोक्यरक्षणः ।
११. ख. क्षणात् १२. घ. ०स्तम्भनेति । १३. अयमंशो नास्ति ख. पुस्तके । १४. ख. महापाशुपतास्त्रादिपातने । १५. घ. रा. पि । १६. घ. रा. नास्त्ययमंशः । १७. ख. चतुस्त्रिंशत् (त्रिंत्रिंशत्) पटलः :

ईश्वर उवाच–

तत्त्वं वद महादेव यदि पुत्रोऽस्मि ते वद।
रहस्यातिरहस्यं च कथ्यते शृणु पुत्रक ॥३॥

अमात्यानां च दुष्टानां दूषकानां दुरात्मनाम्।
क्षुद्रग्रहादिजातीनां सैन्यानामपि पुत्रक ॥४॥

क्रूरग्रहविनाशाय सर्वशान्त्यर्थमेव च।
पराभिचारशान्त्यर्थं रक्षार्थे च विशेषतः ॥५॥

अपमृत्युविनाशार्थं रोगशान्त्यर्थमेव च।
परसेनाविनाशाय स्वसेनारक्षणाय च ॥६॥

आत्मार्थं च परार्थं च विजयार्थं च षण्मुख।
वेतालाश्च विनाशार्थे भैरवादिप्रशान्तये ॥७॥

ससस्तविषनिर्नाशे मुष्टिकुक्षिविधावपि।
शस्त्रास्त्रबाणसंधाने संहारास्त्रादिनाशने ॥८॥

शस्त्रास्त्रस्तम्भने पुत्र तद्वच्छवि(व)विधावपि।
स्तब्धीकरणनिर्नाशे(र्णाशे) मृतकोत्थापनेऽपि च ॥९॥

देशोपद्रवनाशार्थे राष्ट्रभङ्गे समागते।
कोटिकृत्याविनाशार्थे स्वेष्टरक्षणकर्मणि ॥१०॥

हृतनष्टप्रणष्टादिवारुणाग्नेयजातिषु।
पत्रपुष्पफलं शाखाजटात्वक्क्षीरनीरके ॥११॥

महाविषे तैजसे तु विण्मूत्रविजरकृते।
उद्भ्रान्तधूलिनाशार्थे घटकृत्याविनाशने ॥१२॥

जलकृत्याविनाशार्थे स्थलकृत्याविनाशने।
वृक्षकृत्यानाशनार्थे गन्धकृत्याविधावपी(पि) ॥१३॥

महेन्द्रपदनिर्नाशे विरूंडानाशनेऽपि च
भेरूंडनाशनार्थे च रिक्तधावेशभैरवे ॥१४॥

सस्यस्तंभे दारुनाशे मन्त्रमण्डलरोगहृत्।
सप्तब्रह्मास्त्रयोगोऽयं सर्वथा चलति ध्रुवम् ॥१५॥

अमोघमृत्युनाशाय समाश्चर्यकमाय(प)दि।
तं प्रयोगमहायोगं शृणु सावहितो भव ॥१६॥

कुण्डे वा स्थण्डिले वेद्यां चत्वरे पितृकानने ।
चुल्यां सकटया(शकट्यां)वा देवि होतव्यं सर्वकर्मणि ॥१७॥
शुभर्क्षादियोगे तु प्रयोगमादरे(त्)सुत ।
स्वस्तिवाचनमासाद्य द्विजानां वरणं चरेत् ॥१८॥
वगलास्त्रं मध्यमागे करे निष्ठुरबंधनम् ।
पञ्चास्त्रं दक्ष(क्षि)णांशे च मूलास्त्रं होमकर्मणि ॥१९॥
त्रैलोक्यविजयास्त्रं च स्मरेदस्त्रेन्द्रमुत्तमम् ।
निष्ठुरांश्चालयेदेव दीपकास्त्रं प्रयोजयेत्॥२०॥
पूर्वभागे तु पञ्चास्त्रमुत्तरे मुण्डमुत्तमम् ।
महोग्रविजयं दक्षे विजयास्त्रं प्रयोजितम् ॥२१॥
हेलार्क्का चंदला तूर्या तथा पञ्चाङ्गुली प्रिया ।
पश्चिमे कीर्त्तिता विद्या बंधद्वयपुरस्सरम् ॥२२॥
आदौ गणपतिं पूज्य द्वारपूजादिसंयुतम् ।
विप्राणां वरणं कृत्वा वगलादीपमाचरेत् ॥२३॥
मण्डले वगलादीपो(पः)कवचे मूलदीपकः ।
पीताशा(शी) पीतवस्त्राढ्या(ढ्यः) पीतयज्ञोपवीतवान् ॥२४॥
पीताशनी पीतभक्षो पीतशय्यापरायणः ।
हरिद्राक्षेण मणिना सर्वं कार्यं जपादिकम् ॥२५॥
हरिद्राभिः सुरक्ताभिः रोचनाघृतमिश्रितैः ।
बिल्वप्रसूनैर्जुहुयात् सर्वोत्पातनिवारणम् ॥२६॥
अथवा पीतपुष्पैस्तु हरिद्रामधुयोजनम् ।
हरिद्रया दरिद्राणि नश्यन्त्येव न संशयः ॥२७॥
अनेन योगच(व)र्येण सर्वोत्पातनिवारणम् ।
पीताभरणभूषाढ्ये (ढ्यः) पीतशालानिवासकृत् ॥२८॥
शतमष्टोत्तरशतं त्रिशतं च सहस्रकम् ।
त्रिसहस्रं पञ्च तथा दिग्विंशत्यादिरेव च ॥२९॥
पञ्चविंशच्च पञ्चाशत् सहस्रं लक्षमानकम् ।
लक्षोपरि महेशानि न होमोऽस्ति महीतले ॥३०॥
सुन्दर्यां कालिकायां च वैदिके कोटिमात्रकम् ।
होमस्य तु दशांशेन तर्पणं मार्ज्जनं तथा ॥३१॥

सुरया तर्प्पणं पुत्र तेन मार्ज्जनमाचरेत् ।
अभिषेको विप्रभोज्यं साङ्गयोगं प्रसिद्ध्यति ॥३२॥

नातः परतरो योगो विद्यते भुवि मण्डले ।
सर्वकर्म्मविनाशार्थं विषनाशार्थमद्भुतम् ॥३३॥

गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः ।
रहस्यातिरहस्यं च रहस्यातिरहस्यकम् ॥३४॥

इति संक्षेपतः प्रोक्तं तोषयेद्दक्षिणादिना ।
प्रयोगस्योपसंहार (रः) कर्त्तव्यः सिद्धिमिच्छता ॥३५॥

इति षड्विद्यागमे सांख्यायनतन्त्रे
पञ्चत्रिंशत् (चतुस्त्रिंशत्) पटलः ॥३५॥



परिशिष्टम्—(क)

ऋष्यादिन्यासध्यानादियुताः

॥ सांख्यायनतन्त्रगता मन्त्राः ॥

१. एकाक्षरीबगलामन्त्रः—ह्लीं ।

ॐ अस्य श्रीबगलामुख्येकाक्षरीमहामन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्रीछन्दः श्रीबगलामुखी देवता लँ बीजं, ह्लीं शक्तिः, ईं[1] कीलकं श्रीबगलामुखीदेवताम्बा-प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—ब्रह्मर्षये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमो मुखे, श्रीबगलामुखीदेवतायै नमो हृदि, लँ बीजाय नमो गुह्ये, ह्लीं शक्तये नमः पादयोः, रँ कीलकाय नमः सर्वाङ्गे ।

करन्यासः—ॐ ह्लाँ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्लीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ ह्लूँ मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ ह्लैं अनामिकाभ्यां हुम्, ॐ ह्लौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्, ॐ ह्लः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

हृदयादिन्यासः—ॐ ह्लाँ हृदयाय नमः, ॐ ह्लीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्लूँ शिखायै वषट्, ॐ ह्लैं कवचाय हुम्, ॐ ह्लौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्लः अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्—वादी मूकति रङ्कति क्षितिपतिर्वैश्वानरः शीतति,
क्रोधी शाम्यति दुर्जनः सुजनति क्षिप्रानुगः खञ्जति ।
गर्वी खर्वति सर्वविच्च जडति त्वद्यन्त्रिणा यन्त्रितः,
श्रीनित्ये बगलामुखि प्रतिदिनं कल्याणि तुभ्यं नमः ॥

[पञ्चमः पटलः— पृष्ठ—१२, १३]

२. श्रीबगलाषट्त्रिंशदक्षरीविद्यामन्त्रः—ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा ।

ॐ अस्य श्रीबगलामुखीषट्त्रिंशदक्षरीविद्यामहामन्त्रस्य श्रीनारदऋषिः, बृहतीछन्दः,[2] श्रीबगलामुखीदेवता, लँ बीजं, हँ शक्तिः, ईं[3] कीलकं, श्रीबगला-मुखीदेवताप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

---

१ 'रं' इत्यन्यत्र । २. 'अनुष्टुप्छन्दः' इत्यन्यत्र दृश्यते । ३. 'रं' इत्यन्यत्र ।

ऋष्यादिन्यासः—श्रीनारदर्षये नमः शिरसि, बृहतीछन्दसे नमो मुखे, श्रीबगलामुखीदेवतायै नमो हृदये, ह्लँ बीजाय नमो गुह्ये, हूँ शक्तये नमः पादयोः, इँ कीलकाय नमः सर्वाङ्गे ।

करन्यासः—ॐ ह्लीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्लीं बगलामुखि तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ ह्लीं सर्वदुष्टानां मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ ह्लीं वाचं मुखं पदं स्तम्भय अनामिकाभ्यां हुँ, ॐ ह्लीं जिह्वां कीलय कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्, ॐ ह्लीं बुद्धि विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

हृदयादिन्यासः—ॐ ह्लीं हृदयाय नमः, ॐ ह्लीं बगलामुखि शिरसे स्वाहा, ॐ ह्लीं सर्वदुष्टानां शिखायै वषट्, ॐ ह्लीं वाचं मुखं पदं स्तम्भय कवचाय हुँ, ॐ ह्लीं जिह्वां कीलय नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्लीं बुद्धि विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्—चतुर्भुजां त्रिनयनां कमलासनसंस्थिताम् ।
त्रिशूलं पानपात्रं च गदां जिह्वां च बिभ्रतीम् ॥
बिम्बोष्ठीं कम्बुकण्ठीं च समपीनपयोधराम् ।
पीताम्बरां मदाघूर्णां ध्यायेद् ब्रह्मास्त्रदेवताम् ॥

[सप्तमः पटलः—पृष्ठ-१६-१७]

३. श्रीबगलामुखीगायत्रीमन्त्रः—ॐ ह्लीं ब्रह्मास्त्राय विद्महे स्तम्भनबाणाय धीमहि तन्नो बगला प्रचोदयात् ।

ॐ अस्य श्रीबगलागायत्रीमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्रीछन्दः, ब्रह्मास्त्रबगलादेवता, ॐ बीज, ह्लीं[1] शक्तिः, विद्महे कीलकं, श्रीबगलामुखीदेवताप्रसादसिद्धये जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—श्रीब्रह्मर्षये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमो मुखे, श्रीब्रह्मास्त्रबगलामुखीदेवतायै नमो हृदये, ॐ बीजाय नमो गुह्ये, ह्लीं शक्तये नमः पादयोः, विद्महे कीलकाय नमः सर्वाङ्गे ।

करन्यासः—ॐ ह्लीं ब्रह्मास्त्राय विद्महे अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, स्तम्भनबाणाय धीमहि तर्जनीभ्यां स्वाहा, तन्नो बगला प्रचोदयात् मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ ह्लीं ब्रह्मास्त्राय विद्महे अनामिकाभ्यां हुम्, स्तम्भनबाणाय धीमहि कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्, तन्नो बगला प्रचोदयात् करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

१. 'ह्लीं' इत्यपि पाठः ।

हृदयादिन्यासः—ॐ ह्लीं ब्रह्मास्त्राय विद्महे हृदयाय नमः, स्तम्भनबाणाय धीमहि शिरसे स्वाहा, तन्नो बगला प्रचोदयात् शिखायै वषट्, ॐ ह्लीं ब्रह्मास्त्राय विद्महे कवचाय हुम्, स्तम्भनबाणाय धीमहि नेत्रत्रयाय वौषट्, तन्नो बगला प्रचोदयात् अस्त्राय फट् ।

ध्यानं पूर्ववत् ।

[द्वादशः पटलः—पृष्ठ-२६]

४. पञ्चपञ्चाशदक्षरो बगलामुखीपञ्चास्त्रमन्त्रः—ॐ ह्लीं हूं ग्लौं बगलामुखि ह्लां ह्लीं ह्लूं सर्वदुष्टानां ह्लें ह्लौं ह्लः वाचं मुखं पदं स्तम्भय स्तम्भय ह्लः ह्लौं ह्लें जिह्वां कीलय ह्लूं ह्लीं ह्लां बुद्धिं विनाशय ग्लौं हूँ ह्लीं ॐ स्वाहा ।[1]

ॐ अस्य श्रीबगलामुखीपञ्चास्त्रमहामन्त्रस्य वसिष्ठऋषिः, पङ्क्तिश्छन्दः, रणस्तम्भनकारिणी बगलामुखी देवता, लँ बीजं, ह्लीं शक्तिः, रं कीलकं श्रीबगलामुखीदेवताम्बाप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—श्रीनारदऋषये नमः शिरसि, श्रीबगलामुखीदेवतायै नमो हृदये, लँ बीजाय नमो गुह्ये, हँ शक्तये नमः पादयोः ईं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे ।

करन्यासः—ॐ ह्लीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्लीं बगलामुखि तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ ह्लीं सर्वदुष्टानां मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ ह्लीं वाचं मुखं पदं स्तम्भय अनामिकाभ्यां हुम्, ॐ ह्लीं जिह्वां कीलय कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्, ॐ ह्लीं बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिन्यासः ।

ध्यानम्—पीताम्बरधरां देवीं द्विसहस्रभुजान्विताम् ।
सान्द्रजिह्वां गदां चास्त्रं धारयन्तीं शिवां भजेत् ॥

[पञ्चदशः पटलः—पृष्ठ ३८-३९]

५. अष्टपञ्चाशदक्षर उल्कामुख्यस्त्रमन्त्रः—ॐ ह्लीं ग्लौं बगलामुखि ॐ ह्लीं ग्लौं सर्वदुष्टानां ॐ ह्लीं ग्लौं वाचं मुखं पदं ॐ ह्लीं ग्लौं स्तम्भय स्तम्भय ॐ ह्लीं ग्लौं जिह्वां कीलय ॐ ह्लीं ग्लौं बुद्धिं विनाशय ॐ ह्लीं ग्लौं ह्लीं ॐ स्वाहा ।[2]

---

१. "ॐ ह्लीं हूं ग्लौं बगलामुखि ह्लां ह्लीं ह्लूं सर्वदुष्टानां ह्लें ह्लौं ह्लः वाचं मुखं पदं स्तम्भय ह्लः ह्लें ह्लें जिह्वां कीलय ह्लां ह्लौं ह्लां बुद्धिं विनाशय ह्लां ह्लीं ह्लूं ग्लौं हूँ ह्लीं ॐ स्वाहा" इत्येवंविधो मन्त्रोऽप्यन्यत्र दृश्यते ।

२. "ॐ ह्लीं ग्लौं बगलामुखि सर्वदुष्टानां ॐ ह्लीं ग्लौं वाचं मुखं पदं ॐ ह्लीं ग्लौं स्तम्भय स्तम्भय ॐ ह्लीं ग्लौं जिह्वां कीलय कीलय ॐ ह्लीं ग्लौं बुद्धिं नाशय नाशय ॐ ह्लीं ग्लौं स्वाहा" इत्यपि मन्त्रभेदो दृश्यतेऽन्यत्र ।

ॐ अस्य श्रीउल्कामुख्यस्त्रमन्त्रस्य श्रीअग्निवराह[1] ऋषिः, ककुप्[2] छन्दः, श्रीउल्कामुखी देवता, ह्लीं बीजं, स्वाहा शक्तिः, ग्लौं कीलकं, जगत्स्तम्भनकारिणी श्रीउल्कामुखीदेवताम्बाप्रसादसिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—श्रीवराहर्षये नमः शिरसि, अनुष्टुप्छन्दसे नमो मुखे, श्रीउल्कामुखीदेवतायै नमो हृदि, ह्लीं बीजाय नमो गुह्ये, स्वाहाशक्तये नमः पादयोः, ग्लौं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे ।

मूलमन्त्रवत्करषडङ्गन्यासाः ।

ध्यानम्—विलयानलसंकाशां वीरां वेदसमन्विताम् ।
त्रिराण्मयीं महादेवीं स्तम्भनार्थं भजाम्यहम् ॥

[पञ्चदशः पटलः—पृष्ठ-३९]

६. षष्टिवर्णात्मकः श्रीजातवेदमुख्यस्त्रमन्त्रः—ॐ ह्लीं ह्सौं ह्लीं ॐ बगलामुखि सर्वदुष्टानां ॐ ह्लीं ह्सौं ह्लीं ॐ वाचं मुखं पदं स्तम्भय स्तम्भय ॐ ह्लीं ह्सौं ह्लीं ॐ जिह्वां कीलय ॐ ह्लीं ह्सौं ह्लीं ॐ बुद्धिं नाशय नाशय ॐ ह्लीं ह्सौं ॐ स्वाहा ।[3]

ॐ अस्य श्रीजातवेदमुख्यस्त्रमन्त्रस्य श्रीकालाग्निरुद्र ऋषिः, पंक्तिश्छन्दः, श्रीजातवेदमुखी देवता, ॐ बीजं, ह्लीं[4] शक्तिः, हूँ कीलकम्, मम श्रीजातवेदमुखीदेवताम्बाप्रसादसिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—श्रीकालाग्निरुद्रर्षये नमः शिरसि, पंक्तिच्छन्दसे नमो मुखे, श्रीजातवेदमुखीदेवतायै नमो हृदये, ॐ बीजाय नमो गुह्ये, ह्लीं शक्तये नमः पादयोः, हूँ कीलकाय नमः सर्वाङ्गे ।

मूलमन्त्रवत्करषडङ्गन्यासाः—

ध्यानम्—जातवेदमुखीं देवीं देवतां प्राणरूपिणीम् ।
भजेऽहं स्तम्भनार्थं च स्तंभिनीं[5] विश्वरूपिणीम् ॥

[षोडशः पटलः-पृष्ठ-४०-४१]

---

१. 'यज्ञवाराह' इत्यपि पाठः । २. 'अनुष्टुप्' इत्यन्यत्र ।
३. मन्त्रोऽयं सूत्रानुसारेण तु द्वाषष्टिवर्णात्मको जायते किन्त्वन्यत्र निम्नोद्धृतरीत्या दृश्यते षष्टिवर्णः—
"ॐ ह्लीं हौं ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां ॐ ह्लीं हौं ह्लीं ॐ वाचं मुखं पदं स्तम्भय स्तम्भय ॐ ह्लीं हौं ह्लीं ॐ जिह्वां कीलय ॐ ह्लीं हौं ॐ बुद्धिं नाशय नाशय ॐ ह्लीं हौं ह्लीं ॐ स्वाहा ॥
४. 'ह्लीं' इत्यपि पाठः । ५. चिन्मयीमिति पाठः क्वचित् ।

७. विंशोत्तरशतवर्णात्मको ज्वालामुख्यस्त्रमन्त्रः—ॐ ह्लीं राँ रीं रूँ रैं रौं प्रस्फुर प्रस्फुर बगलामुखि[1] ॐ ह्लीं राँ रीं रूँ रैं रौं प्रस्फुर प्रस्फुर सर्वदुष्टानां ॐ ह्लीं राँ रीं रूँ रैं रौं प्रस्फुर प्रस्फुर वाचं मुखं पदं स्तम्भय स्तम्भय ॐ ह्लीं राँ रीं रूँ रैं रौं प्रस्फुर प्रस्फुर जिह्वां कीलय कीलय ॐ ह्लीं रां रीं रूँ रैं रौं प्रस्फुर प्रस्फुर बुद्धिं विनाशय विनाशय ॐ ह्लीं रां रीं रूँ रैं रौं प्रस्फुर प्रस्फुर स्वाहा ।[2]

ॐ अस्य श्रीज्वालामुख्यस्त्रमन्त्रस्य श्रीअत्रि ऋषिर्गायत्री छन्दः, श्रीज्वालामुखी देवता, ॐ बीजं, ह्लीं शक्तिः, हूँ कीलकं श्रीज्वालामुखीदेवताम्बाप्रसादसिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—श्री अत्रिऋषये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमो मुखे, श्रीज्वालामुखीदेवतायै नमो हृदि, ॐ बीजाय नमो गुह्ये, ह्लीं शक्तये नमः पादयोः, हूँ कीलकाय नमः सर्वाङ्गे ।

मूलमन्त्रवत्करषडङ्गन्यासाः

ध्यानम्—ज्वलत्पद्मासनायुक्तां कालानलसमप्रभाम् ।
चिन्मयीं स्तम्भिनीं देवीं भजेऽहं विधिपूर्वकम् ।।

[षोडशः पटलः—पृष्ठ–४१]

८. षडुत्तरशताधिकवर्णात्मको श्रीबृहद्भानुमुख्यस्त्रमन्त्रः—ॐ ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः ह्लां ह्लीं ह्लूँ ह्लैं ह्लौं ह्लः ॐ बगलामुखि ॐ ह्लाँ ह्लीं ह्लूँ ह्लैं ह्लौं ह्लः ह्लाँ ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः ॐ सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय स्तम्भय ॐ ह्लाँ ह्लीं ह्लूँ ह्लैं ह्लौं ह्लः ह्लाँ ह्लीं ह्लूँ ह्लैं ह्लौं ह्लः ॐ जिह्वां कीलय ॐ ह्लाँ ह्लीं ह्लूँ ह्लैं ह्लौं ह्लः ह्लाँ ह्लीं ह्लूँ ह्लैं ह्लौं ह्लः ॐ बुद्धिं नाशय ॐ ह्लाँ ह्लीं ह्लूँ ह्लैं ह्लौं ह्लः ह्लाँ ह्लीं ह्लूँ ह्लैं ह्लौं ह्लः ॐ ह्लीं ॐ स्वाहा ।[3]

१. एतत्पदस्थाने 'ज्वालामुखि' पदं सूत्रे वर्त्तते किन्त्वस्य ग्रहणान्मंत्रे एकाक्षरन्यूनता स्यादतस्तत्पदमेवात्र संगृहीतम् ।

२. सूत्रे तु 'वह्निबीजं च पञ्चकं' इति दर्शनात्त्वत्र 'रं रं रं रं रं' इति बीजानि ग्राह्याणि किन्तूपर्युक्तबीजानामन्यत्रापि व्यवहारादत्रापि स्वीकृता नीत्यूह्यानि

३. अन्यत्रैष मन्त्रश्चतुरुत्तरशतवर्णात्मकोऽपि दृश्यते यथा—ॐ ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः ह्लः ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लूं बगलामुखि ॐ ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः ह्लः ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लूं सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय स्तम्भय ॐ ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः ह्लः ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लूं जिह्वां कीलय ॐ ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः ह्लः ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लूं बुद्धिं नाशय ॐ ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लः ह्लः ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं ह्लूं स्वाहा ।।

ॐ अस्य श्रीवृहद्भानुमुख्यस्त्रमन्त्रस्य श्रीसविता ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्रीबृहद्भानुमुखी देवता, ह्लीं बीजं, ह्लीं शक्तिः, ॐ कीलकं, श्रीवृहद्भानुमुखी-देवताम्बाप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—श्री सवितृऋषये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमो मुखे, श्रीवृहद्भानुमुखीदेवतायै नमो हृदये, ह्लीं वीजाय नमो गुह्ये, ह्लीं शक्तये नमः पादयोः, ॐ कीलकाय नमः सर्वाङ्गे ।

मूलमन्त्रवत्करषडङ्गन्यासाः ।

ध्यानम्—कालानलनिभां देवीं ज्वलत्पुञ्जशिरोरुहाम् ।
कोटिबाहुसमायुक्तां वैरिजिह्वासमन्विताम् ॥१॥
स्तम्भनास्त्रमयीं देवीं दृढपीनपयोधराम् ।
मदिरामदसंयुक्तां वृहद्भानुमुखीं भजे ॥२॥

[सप्तदशः पटलः- पृष्ठ-४२–४३]

६. श्रीबगलामुखीशताक्षरीमहामन्त्रः—ह्लीं ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं ग्लौं ह्लीं बगलामुखि स्फुर स्फुर सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय स्तम्भय प्रस्फुर प्रस्फुर विकटाङ्गि घोररूपि जिह्वां कीलय महाभ्रमकरि वुद्धिं नाशय विराण्मयि[1] सर्वप्रज्ञामयि प्रज्ञां नाशय उन्मादीकुरु[2] कुरु मनोपहारिणि ह्लीं ग्लौं श्रीं क्लीं ह्रीं ऐं ह्लीं स्वाहा ॥

ॐ अस्य श्रीबगलामुखीशताक्षरीमहामन्त्रस्य श्रीब्रह्मा ऋषिः, गायत्रीछन्दः, जगत्स्तम्भनकारिणी श्रीबगलामुखी देवता, ह्लीं बीजं, ह्रीं शक्तिः, ऐं कीलकं, जगत्स्तम्भनकारिणी श्रीबगलामुखीदेवताम्बाप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

मूलमन्त्रवत्करषडङ्गन्यासाः ।

ध्यानम्—पीताम्बरधरां सौम्यां पीतभूषणभूषिताम् ।
स्वर्णसिंहासनस्थां च मूले कल्पतरोरधः ॥१॥
वैरिजिह्वाभेदनार्थं छुरिकां[3] बिभ्रतीं शिवाम् ।
पानपात्रं गदां पाशं धारयन्तीं भजाम्यहम् ॥२॥

(सप्तदशः पटलः– पृष्ठ-४४–४५)

---

१. 'विराग्मय' इत्यपि पाठः . 'उन्मादं कुरु' इति पाठोऽपि दृश्यते । ३. 'क्षुरिकां' इति पाठोऽन्यत्र ।

१०. अष्टाविंशत्युत्तरैकशताक्षरः श्रीबगलामुखीपरविद्याभेदनमन्त्रः[1]—**ॐ ह्लीं श्रीं ह्रीं 'ग्लौं ऐं क्लीं हुँ क्षीं'**[2] बगलामुखि परप्रयोगं ग्रस ग्रस **ॐ ह्लीं श्रीं ह्रीं ग्लौं ऐं क्लीं हुँ क्षीं** ब्रह्मास्त्ररूपिणि परविद्याग्रसिनि भक्षय भक्षय **ॐ ह्लीं श्रीं ह्रीं ग्लौं ऐं क्लीं हुँ क्षीं** परप्रज्ञाहारिणि प्रज्ञां भ्रंशय भ्रंशय **ॐ ह्लीं श्रीं ह्रीं ग्लौं ऐं क्लीं हुँ क्षीं** स्तम्भनास्त्ररूपिणि बुद्धि नाशय नाशय पञ्चेन्द्रियज्ञानं भक्ष भक्ष **ॐ ह्लीं श्रीं ह्रीं ग्लौं ऐं क्लीं हुँ क्षीं** बगलामुखि हुँ फट् स्वाहा ।[3]

ॐ अस्य श्रीपरविद्याभेदिनीबगलामन्त्रस्य श्रीब्रह्मा ऋषिः, गायत्रीछन्दः, परविद्याभक्षिणी श्रीबगलामुखी देवता, आँ बीज, ह्रीं शक्तिः क्रों कीलकं, श्रीबगलादेवीप्रसादसिद्धिद्वारा परविद्याभेदनार्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—श्रीब्रह्मर्षये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमो मुखे, परविद्याभक्षिणीश्रीबगलामुखीदेवतायै नमो हृदये, आं बीजाय नमो गुह्ये, ह्रीं शक्तये नमः पादयोः, क्रों कीलकाय नमः सर्वाङ्गे ।

करन्यासः—आँ ह्रीं क्रों अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, वद वद तर्जनीभ्यां स्वाहा, वाग्वादिनि मध्यमाभ्यां वषट्, स्वाहा अनामिकाभ्यां हुँ, ऐं क्लीं सौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्, ह्लीं करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

हृदयादिन्यासः—आँ ह्रीं क्रों हृदयाय नमः, वद वद शिरसे स्वाहा, वाग्वादिनि शिखायै वषट्, स्वाहा कवचाय हुँ, ऐं क्लीं सौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्लीं अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्—सर्वमन्त्रमयीं देवीं सर्वाकर्षणकारिणीम् ।
सर्वविद्याभक्षिणीं च भजेऽहं विधिपूर्वकम् ॥

[विंशः पटलः—पृष्ठ-५४-५५]

११. त्रिचत्वारिंशदक्षरो बगलास्त्रमन्त्रः—ॐ[3] ह्लीं हुं ग्लौं ह्लीं बगलामुखि मम शत्रून् ग्रस ग्रस खाहि खाहि भक्ष भक्ष शोणितं पिब पिब बगलामुखि ह्लीं ग्लौं हुं 'फट् स्वाहा'[4] ।

---

१. सूत्रानुसारेण वर्णोद्धारादयं मंत्रः सप्तविंशोत्तरशताक्षर एव भवति । २. 'ग्लौं हुँ ऐं क्लीं क्षीं' तथा 'यु एं क्लीं हुँ क्ष्मीं' इति पाठभेदौ क्वचिद्दृश्येते ।

३. यद्यपि पुस्तके तु 'ॐ' शब्दस्योपयोगो नावलोक्यते, न चैतादृश एव 'स्वाहा' शब्दव्यवहारस्तथापि शब्दद्वयी अत्यावश्यकी संभाव्या वर्णसंख्यानुपूरकत्वात् ४. रा.कृ. पुस्तके 'फट्-स्वाहा' स्थाने 'ह्लीं स्वाहा' इति दृश्यते । अत्र पुस्तकेऽप्ययं मन्त्रो द्विचत्वारिंशदक्षरात्मक एव गृहीतः किन्त्वत्र ऋष्यादिन्यासे 'फट् कीलक' मिति ग्रहणादसाधुरेव प्रतीयते ।

ॐ अस्य श्रीबगलास्त्रमन्त्रस्य श्रीदुर्वासा ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, अस्त्ररूपिणीश्रीबगलामुखी देवता, ग्लौं बीजं, ह्लीं शक्तिः, फट् कीलकं श्रीअस्त्ररूपिणीबगलाम्बाप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः—श्रीदुर्वाससे ऋषये नमः शिरसि, अनुष्टुप्छन्दसे नमो मुखे, अस्त्ररूपिण्यै श्रीबगलादेवतायै नमो हृदये, ग्लौं बीजाय नमो गुह्ये, ह्लीं शक्तये नमः पादयोः, फट् कीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

करन्यासः—ॐ ह्लीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, बगलामुखि तर्जनीभ्यां स्वाहा, सर्वदुष्टानां मध्यमाभ्यां वषट्, वाचं मुखं पदं स्तम्भय अनामिकाभ्यां हुं, जिह्वां कीलय कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्, बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

हृदयादिन्यासः—ॐ ह्लीं हृदयाय नमः, बगलामुखि शिरसे स्वाहा, सर्वदुष्टानां शिखायै वषट्, वाचं मुखं पदं स्तम्भय कवचाय हुं, जिह्वां कीलय नेत्रत्रयाय वौषट्, बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा अस्त्राय फट्।

ध्यानम्—चतुर्भुजां त्रिनयनां पीनोन्नतपयोधराम्।
जिह्वां खड्गं पानपात्रं 'गदां धारयन्तीं पराम्'[1] ॥१॥
पीताम्बरधरां देवीं पीतपुष्पैरलङ्कृताम्।
बिम्बोष्ठीं चारुवदनां मदाघूर्णितलोचनाम् ॥२॥
सर्वविद्याकर्षिणीं च सर्वप्रज्ञापहारिणीम्।
भजेऽहं चास्त्रबगलां सर्वाकर्षणकर्मसु ॥३॥

[द्वाविंशः पटलः—पृष्ठ-५९-६०]

१२. **श्रीबगलाचतुरक्षरीमन्त्रः**—ॐ आँ ह्लीं क्रों। ॐ अस्य श्रीबगलाचतुरक्षरीमन्त्रस्य श्रीब्रह्मा ऋषिः, गायत्रीछन्दः, श्रीबगला देवता, ह्लीं बीजं, आँ शक्तिः, क्रों कीलकं श्रीबगलामुखीदेवताम्बाप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः—श्रीब्रह्मर्षये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमो मुखे, श्रीबगलादेवतायै नमो हृदये, ह्लीं बीजाय नमो गुह्ये, आं शक्तये नमः पादयोः, क्रों कीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

करन्यासः—ॐ ह्लां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्लीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ ह्लूं मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ ह्लैं अनामिकाभ्यां हुं, ॐ ह्लौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्, ॐ ह्लः अस्त्राय फट्।

---

१. '—' 'गदामस्त्रं च बिभ्रतीं' तथा च 'गदां धारयन्तीं शिवाम्' इति पाठभेदौ क्वचित्।

हृदयादिन्यासः—ॐ ह्लां हृदयाय नमः, ॐ ह्लीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्लूं शिखायै वषट्, ॐ ह्लैं कवचाय हुँ, ॐ ह्लौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्लः अस्त्राय फट्।

ध्यानम्—कुटिलालकसंयुक्तां मदाघूर्णितलोचनाम् ।
मदिरामोदवदनां प्रवालसदृशाधराम् ।।१।।
सुवर्णशैलसुप्रख्यकठिनस्तनमण्डलाम्[1] ।
दक्षिणावर्त्तसन्नाभिसूक्ष्ममध्यमसंयुताम् ।।२।।
रम्भोरुपादपद्मां तां पीतवस्त्रसमावृताम् ।

[पञ्चविंशः पटलः—पृष्ठ-६७-६८]

१३. अशीत्यक्षरात्मकः श्रीबगलाहृदयमन्त्रः—ॐ[2] आं ह्लीं क्रों ग्लौं[3] हुँ ऐं क्लीं श्रीं ह्रीं बगलामुखि आवेशय आवेशय आं ह्लीं क्रों ब्रह्मास्त्ररूपिणि एहि एहि आं ह्लीं क्रों मम हृदये आवाहय आवाहय सन्निधिं[4] कुरु कुरु आं ह्लीं क्रों मम हृदये चिरं तिष्ठ तिष्ठ आं ह्लीं क्रों हुँ फट् स्वाहा ।

अस्य मंत्रस्य ऋष्यादिन्यास-ध्यानादयो नैवोल्लिखिताः पुस्तके ।

[अष्टाविंशः पटलः—पृष्ठ-७७-७८]

१४. श्रीबगलाष्टाक्षरात्मको मन्त्रः—ॐ आं ह्लीं क्रों हुँ फट् स्वाहा ।

ॐ अस्य श्रीबगलाष्टाक्षरात्मकमन्त्रस्य श्रीब्रह्मा ऋषिः, गायत्रीछन्दः, श्रीबगलामुखी देवता, ॐ बीजं, ह्लीं शक्तिः, क्रों कीलकं श्रीबगलादेवताम्बाप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—श्रीब्रह्मर्षये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमो मुखे, श्रीबगलामुखीदेवतायै नमो हृदि, ॐ बीजाय नमो गुह्ये, ह्लीं शक्तये नमः पादयोः, क्रों कीलकाय नमः सर्वाङ्गे ।

करन्यासः—ॐ ह्लां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्लीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ ह्लूं मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ ह्लैं अनामिकाभ्यां हुँ, ॐ ह्लौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्, ॐ ह्लः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

हृदयादिन्यासः—ॐ ह्ला हृदयाय नमः,ॐ ह्लीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्लूं शिखायै वषट्, ॐ ह्लैं कवचाय हुँ, ॐ ह्लौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्लः अस्त्राय फट् ।

---

१. सुवर्णशैलविलसत्० इत्यपि क्वचित् । २. यद्यपीवं सूत्रे नैव सूत्रितं किन्त्वनेन विनाऽयं मंत्रः एकोनाशीत्यक्षरात्मकः स्यादत एवात्र स्वीकृतम् ३. 'ग्लौं' इति शक्तिवाराहबीजस्थाने रा० पु० ... बीज 'लं' इति वर्त्तते । ४. 'सान्निध्य'मपीति पाठोऽन्यत्र ।

ध्यानम्—युवतीं[1] च मदोद्रिक्तां[2] पीताम्वरधरां शिवाम् ।
पीतभूषणभूषाङ्गीं समपीनपयोधराम् ।।१।।
मदिरामोदवदनां प्रवालसदृशाधराम् ।
'पानपात्रं च शुद्धिं च'[3] विभ्रतीं बगलां स्मरेत् ।।२।।
[त्रिंशः पटलः-पृष्ठ-८१]

१५. एकोनषष्टिवर्णात्मकः श्रीबगलोपसंहारविद्यामन्त्रः—ग्लौं हुं ऐं ह्रीं[4] श्रीं कालि कालि महाकालि एहि एहि कालरात्रि आवेशय आवेशय महामोहे महामोहे स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर स्तंभनास्त्रशमनि हुं फट् स्वाहा ।[5]

ॐ अस्य श्रीबगलास्त्रोपसंहारविद्यामन्त्रस्य श्रीब्रह्मा ऋषिः, गायत्रीछन्दः, स्तंभनास्त्रविभेदिनी श्रीकालिका देवता, क्रीं बीजं, फट् शक्तिः, स्वाहा कीलकं श्रीबगलाप्रसादसिद्धिद्वारा ब्रह्मास्त्रोपसंहारार्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—श्रीब्रह्मर्षये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमो मुखे, स्तम्भनास्त्रविभेदिनीश्रीकालिकादेवतायै नमो हृदये, क्रीं बीजाय नमो गुह्ये, फट्शक्तये नमः पादयोः, स्वाहा कीलकाय नमः सर्वाङ्गे ।

करन्यासः—ॐ क्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ क्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ क्रूं मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ क्रैं अनामिकाभ्यां हूं, ॐ क्रौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्, ॐ क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

हृदयादिन्यासः—ॐ क्रां हृदयाय नमः, ॐ क्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ क्रूं शिखायै वषट्, ॐ क्रैं कवचाय हूं, ॐ क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ क्रः अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्—कालीं करालवदनां कलाधरधरां शिवाम् ।
स्तम्भनास्त्रैकसंहारीं ज्ञानमुद्रासमन्विताम् ।।१।।
वीणापुस्तकसंयुक्तां कालरात्रिं नमाम्यहम् ।
बगलास्त्रोपसंहारीदेवतां विश्वतोमुखीम् ।।२।।
भजेऽहं कालिकां देवीं जगद्वशकरां शिवाम् ।
[द्वात्रिंशः पटलः—पृष्ठ—८७-८८]

---

१. 'यौवना' मित्यन्यत्र । २. 'मदोन्मत्ता' मित्यपि पाठः । ३. 'वैरिजिह्वां पानपात्रं' इति पाठोऽपि दृश्यते । ४. 'क्रीं' इत्यन्यत्र । ५. एष मन्त्रस्तु रा० पुस्तकधृतसूत्रोद्धार-स्वरूपः । पुस्तकस्थसूत्रात्तु त्रिपञ्चाशद्वर्णात्मक एष मंत्रो जायते 'कालरात्रि' पदान्ते 'आवेशय आवेशय' इति पदद्वयविरहात् ।

१६. द्वात्रिंशद्वर्णात्मकस्ताक्ष्यमालामन्त्रः[1]—ॐ क्षीं नमो भगवते क्षीं पक्षिराजाय सर्वाभिचारध्वंसकाय क्षीमों फट् स्वाहा ।

[बगलोत्कीलनविधिः]—

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य कूर्चयुग्मं समुच्चरेत् ।
कामत्रयं वाग्भवं च लज्जाषट्कं समुच्चरेत् ॥१॥
क्रींकाराष्टकमुच्चार्य बगलाशापमुच्चरेत् ।
उत्कीलनपदद्वन्द्वं अग्निजायां समुद्धरेत् ॥२॥
शापोद्धारप्रकारोऽयं तन्त्रराजे प्रकीर्त्तितः ।
उत्कीलिता ब्रह्मविद्या मन्त्रेनानेन सिद्धयति ॥३॥

स्पष्टार्थः—ॐ हूँ हूँ क्लीं क्लीं क्लीं ऐं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं बगलाशापमुत्कीलय उत्कीलय स्वाहा ॥



परिशिष्टम् (ख)

॥ अथ वज्रपञ्जरकवचस्तोत्रम् ॥

ध्यात्वा मनसा सम्पूज्य मुद्राः प्रदर्श्य पञ्जरं न्यसेत्—

शिव उवाच—

पञ्जरं तत्प्रवक्ष्यामि देव्याः पापप्रणाशनम् ।
यं प्रविश्य न बाधन्ते बाणैरपि नरा भुवि ॥१॥

ॐ ऐं हं श्रीं श्रीमत्पीताम्बरा देवी बगला बुद्धिवर्द्धिनी ।
पातु मामनिशं साक्षात् सहस्रार्कयुतद्युतिः ॥२॥

शिखादिपादपर्य्यन्तं वज्रपञ्जरधारिणी ।
श्रीब्रह्मास्त्रविद्या या पीताम्बरविभूषिता ॥३॥

बगला मामवत्वत्र मूर्द्धभागं महेश्वरी ।
कामाङ्कुशा कला पातु बगला शास्त्रबोधिनी ॥४॥

---

१. अयं मन्त्रः पुस्तके द्वात्रिंशाक्षर एवोद्धोषितः किन्तूद्धारात्त्रिंशाक्षर एव संभवति स चोपरि प्रदर्शित एव । रा० पुस्तके चैष एव मंत्रः षड्विंशाक्षर एव स्वीकृतोऽस्ति यथा—'ॐ क्षीं ॐ नमो भगवते पक्षिराजाय अभिचारध्वंसकाय हुं फट् स्वाहा'

पीताम्बरा सहस्राक्षी ललाटे कामितार्थदा ।
ॐ ऐं ह्लीं श्रीं श्रोः [मे]पातु पीताम्बरसुधारिणी ॥५॥

कर्णयोश्चैव युगपदतिरत्नप्रपूजिता ।
ॐ ऐं ह्लीं श्रीं पातु बगला नासिकं मे गुणाकरा ॥६॥

पीतपुष्पैः पीतवस्त्रैः पूजिता वेददायिनी ।
ॐ ऐं ह्लीं श्रीं पातु बगला ब्रह्मविष्ण्वादिसेविता ॥७॥

पीताम्बरा प्रसन्नास्या नेत्रयोर्युगपद्भ्रुवोः ।
ॐ ऐं ह्लीं श्रीं पातु बगला बलदा पीतवस्त्रधृक् ॥८॥

अधरोष्ठौ तथा दन्तान् जिह्वां च मुखगा मम ।
ॐ ऐं ह्लीं श्रीं पातु बगला पीताम्बरसुधारिणी ॥९॥

गले हस्ते तथा बाहौ युगपद्बुद्धिदा सताम् ।
ॐ ऐं ह्लीं श्रीं पातु बगला पीतवस्त्रावृता घना ॥१०॥

जङ्घायां च तथा चोरौ गुल्फयोश्चातिवेगिनी ।
अनुक्तमपि यत्स्थानं त्वक्केशनखलोम मे ॥११॥

असृग्मांसं तथास्थीनि सन्धयश्चाति मे परा ।

श्रीशिव उवाच—

इत्येतद्वरदं गोप्यं कलावपि विशेषतः ॥१२॥

पञ्जरं बगलादेव्या दीर्घदारिद्र्यनाशनम् ।
पञ्जरं यः पठेद्भक्त्या स विघ्नैर्नाभिभूयते ॥१३॥

अव्याहतगतिश्चापि ब्रह्मविष्ण्वादिसत्पुरे ।
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले नारयस्तं कदाचन ॥१४॥

प्रबाधन्ते नरं व्याघ्राः पञ्जरस्थं कदाचन ।
अतो भक्तैः कौलिकैश्च स्वरक्षार्थं सदैव हि ॥१५॥

पठनीयं प्रयत्नेन सर्वानर्थविनाशनम् ।
महादारिद्र्यशमनं सर्वमाङ्गल्यवर्द्धनम् ॥१६॥

विद्याविनयसत्सौख्यं महासिद्धिकरं परम् ।
इदं ब्रह्मास्त्रविद्यायाः पञ्जरं साधु गोपितम् ॥१७॥

पठेत् स्मरेद् ध्यानसंस्थः स जीयान्मरणं नरः ।
यः पञ्जरं प्रविश्यैवं मन्त्रं जपति वै भुवि ॥१८॥

कौलिको वा कौशिको वा व्यासवद् विचरेद् भुवि ।
चन्द्रसूर्यप्रभुर्भूत्वा वसेत् कल्पायुतं दिवि ॥१६॥

सूत उवाच—

इति कथितमशेषं श्रेयसामादिबीजं,
भवशतदुरितघ्नं ध्वस्तमोहान्धकारम् ।
स्मरणमतिशयेन प्रातरेवात्र मर्त्यो,
यदि विशति सदा यः पञ्जरं पण्डितः स्यात् ॥२०॥

इति श्रीपरमरहस्यातिरहस्ये श्रीपीताम्बरायाः

पञ्जरं सम्पूर्णम् ॥

श्रीप्रसन्नास्तु ॥ श्रीबगलामुखी प्रीयतां मिति पोष सुदि १३, संवत् १९२२ लिखितं काश्यां दुर्गाबाई इदं पुस्तकम् ॥



परिशिष्टम् (ग)

॥ अथ बगलामुखीत्रैलोक्यविजयं नाम कवचम् ॥

श्रीभैरव उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि स्वरहस्यं च कामदम् ।
श्रुत्वा गुप्ततमं गोप्यं कुरु गुप्तं सुरेश्वरि ॥१॥
कवचं बगलामुख्याः सकलेष्टप्रदं कलौ ।
यत्सर्वं च परं गुह्यं गुप्तं च शरजन्मनः ॥२॥
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचेशं मनोरमम् ।
मन्त्रगर्भं मन्त्ररूपं सर्वसिद्धिविनायकम् ॥३॥
रहस्यं परमं ज्ञेयं साक्षादमृतरूपिणम् ।
ब्रह्मविद्यामयं वर्मं दुर्लभं प्राणिनां कलौ ॥४॥
पूर्णमेकोनपञ्चाशद्वर्णैर्मन्त्रमयैर्युतम् ।
त्वद्भक्त्या वच्मि देवेशि गोपनीयं स्वयोनिवत् ॥५॥

श्रीदेव्युवाच—

भगवन् करुणासागर विश्वनाथ सुरेश्वर ।
कर्मणा मनसा वाच्यं न वक्ष्यामि ... च ॥६॥

भैरव उवाच—

त्रैलोक्यविजयाख्यस्य कवचस्यास्य पार्वति ।
मन्त्रगर्भस्य मु(सू?) क्तस्य ऋषिर्देवस्तु भैरवः ॥७॥

उष्णिक् छन्दः समाख्यातं देवी क्लीं (च?) बगलामुखी ।
बीजं क्लीं ओं च शक्तिः स्यात् स्वाहा कीलकमुच्यते ॥८॥

विनियोगः समाख्यातस्त्रिवर्गफलसाधने ।
देवीं ध्यात्वा पठेद्वर्म मन्त्रगर्भं सुरेश्वरि ॥९॥

विना ध्यानेन नो सिद्धिः सत्यं जानीहि पार्वति ।

चन्द्रोद्भासितमूर्द्धजां रिपुरसां मुण्डाक्षमालाकरां,
बालां पीतस्रगुज्वलां मधुमदारक्तां जटाजूटिनीम् ।
शत्रुस्तम्भनकारिणीं शशिमुखीं पीताम्बरोद्भासितां,
प्रेतस्थां बगलामुखीं भगवतीं कारुण्यरूपां भजे ॥१०॥

ॐ क्लीं मम शिरसि पातु देवी ह्लीं बगलामुखी ।
ॐ क्लीं पातु मे भाले देवी स्तम्भनकारिणी ॥११॥

ॐ अँ ईं हं भ्रुवौ पातु बगला क्लेशहारिणी ।
ॐ हं क्षं पातु मे नेत्रे नारसिंही शुभङ्करी ॥१२॥

ॐ ह्रीं श्रीं पातु मे जङ्घे अं आं इं भुवनेश्वरी ।
ॐ क्लीं सः मे श्रुती पातु ईं उं ऊं ऋं मुखेश्वरी ॥१३॥

ॐ ह्रीं क्रीं ह्रीं सदाव्यान्मे नासां ऋं लृं सरस्वती ।
ॐ ह्रीं ह्रां मे मुखं पातु लॄं एं ऐं छिन्नमस्तका ॥१४॥

ॐ श्रीं मे अधरौ पातु ओं औं दक्षिणकालिका ।
ॐ ह्रीं हूं मे दन्तान् पातु अं अः मे भद्रकालिका ॥१५॥

ॐ क्रीं श्रीं रसनां पातु कं खं गं घं चरात्मिका ।
ॐ ऐं सौः मे हनौ पातु ङं चं छं जं च जानकी ॥१६॥

ॐ श्रीं ग्रीं (क्लीं) मे गलं पातु झं ञं टं ठं गणेश्वरी ।
ॐ ह्रीं स्कन्धौ सदाव्यान्मे डं ढं णं चैव तोतला ॥१७॥

ॐ ह्रीं मे भुजौ पातु तं थं दं वरवर्णिनी ।
ॐ क्लीं सौः मे स्तनौ पातु धं नं पं परमेश्वरी ॥१८॥

ॐ जूं क्रों मे रक्ष वक्षः फ बं भं भगवासिनी ।
ॐ क्रौं ह्रौं पातु मे कुक्षि मं यं र चक्रिवल्लभा ॥१६॥

ॐ श्रीं ह्रूं पातु मे पार्श्वौ लं वं लम्बोदरप्रसूः ।
ॐ क्रौं ह्रूं पातु मे नाभिं शं गं षण्मुखपालिनी ॥२०॥

ॐ ऐं सौः पातु मे पृष्ठं सं हं हाटकरूपिणी ।
ॐ क्लीं ऐं पातु मे शिश्नं ळं क्षं हं तत्वरूपिणी ॥२१॥

ॐ क्लीं ह्रूं मे कटिं पातु पञ्चाशद्वर्णमातृका ।
ॐ ऐं क्लीं पातु मे गुह्यं अं आं कं गुह्यकेश्वरी ॥२२॥

ॐ श्रीं ऊरू सदाव्यान्मे इं ईं खं रंगगामिनी ।
ॐ जूं सः पातु मे जानू उं ऊं ग गणवल्लभा ॥२३॥

ॐ श्रीं ह्रीं पातु मे जङ्घे ऋं ॠं घं च महारिणी ।
ॐ श्रीं सः पातु मे गुल्फौ ऌं ॡं ङं चं च कालिका ॥२४॥

ॐ ऐं ह्रीं पातु मे सन्धी एं ऐं छं जं जगत्प्रिया ।
ॐ श्रीं क्लीं पातु मे पादौ ओं औं झं ञं भगादरी ॥२५॥

ॐ ह्रीं मे सर्ववपुः पातु अं अः ह्रीं त्रिपुरेश्वरी ।
ॐ श्रीं पूर्वे सदाव्यान्मां अं आँ टं ठं शिखामुखी ॥२६॥

ॐ ह्रीं याम्यां सदाव्यान्मां इं डं ढं णं च तारिणी ।
ॐ ह्रीं मां पातु वारुण्यां ईं तं थं दं च खेश्वरी ॥२७॥

ॐ यं मां पातु कौवेर्यां उं धं नं पं पिलंपिला ।
ॐ श्रीं पातु चैशान्यां ऊं फं बं वैन्दवेश्वरी ॥२८॥

ॐ श्रीं मां पातु चाग्नेय्यां ऋं भं मं यं च योगिनी ।
ॐ ऐं मां पातु नैऋत्यां ॠं रं राजेश्वरी सदा ॥२९॥

ॐ श्रीं मां पातु वायव्यां ऌं लं लम्बितकेशिनी ।
ॐ प्रभाते च मां पातु ॡं वं वागीश्वरी सदा ॥३०॥

ॐ मध्याह्ने च मां पातु एं शं शङ्करवल्लभा ।
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं पातु मां सायं ऐं षं शाबरी सदा ॥३१॥

ह्रीं निशादौ च मां पातु ओं सं सागरशायिनी ।

क्लीं निशीथे च मां पातु औं हं हरिहरेश्वरी ॥३२॥

क्लीं ब्राह्मे मां मुहूर्त्तेऽव्यादं ळं त्रिपुरसुन्दरी ।
विस्मारितं च यत्स्थानं वर्जितं कवचेन तु ॥३३॥
ह्लीं तन्मे सकलं पातु अः क्षः क्लीं बगलामुखी ।
इतीदं कवचं गुह्यं मन्त्राक्षरमयं परम् ॥३४॥
त्रैलोक्यविजयं नाम सर्ववर्णमयं स्मृतम् ।
अप्रकाश्यमदातव्यं न श्रोतव्यमवाचकम् ॥३५॥
दुर्जनायाकुलीनाय दीक्षाहीनाय पार्वति ।
न दातव्यं न दातव्यमित्याज्ञा परमेश्वरि ॥३६॥
अदीक्षित उपाध्यायविहीनः शक्तिभक्तिमान् ।
कवचस्यास्य पठनात् साधको दीक्षितो भवेत् ॥३७॥
कवचेशमिदं गोप्यं सिद्धविद्यामयं परम् ।
ब्रह्मविद्यामयमिदं यथाभीष्टफलप्रदम् ॥३८॥
न कस्य कथितं चैतत् त्रैलोक्यविजयेश्वरी ।
यस्य स्मरणमात्रेण देवी सद्यो वशीभवेत् ॥३९॥
पठनाद्धारणाच्चास्य कवचेशस्य साधकः ।
कलौ विचरते वीरो यथा ह्लीं बगलामुखी ॥४०॥
इमं मन्त्रं स्मरन्मन्त्री संग्रामं प्रविशद् यथा ।
त्रिः पठेत् कवचेशन्तु युयुत्सुः साधकोत्तमः ॥४१॥
शत्रून् कालसमानान् तु जित्वा स्वगृहमेष्यति ।
मूर्ध्नि धृत्वा तु कवचं मन्त्रगर्भं तु साधकः ॥४२॥
ब्रह्माद्यानमरान् सर्वान् सहसा वशमानयेत् ।
धृत्वा गले तु कवचं साधकस्य महेश्वरि ॥४३॥
वशमायान्ति सहसा रम्भाद्यप्सरसां गणाः ।
उत्पातेषु च घोरेषु भयेषु विविधेषु च ॥४४॥
रोगेषु कवचेशं च मन्त्रगर्भं पठेन्नरः ।
कर्मणा मनसा वाचा तद्भयं शान्तिमेष्यति ॥४५॥
श्रीदेव्या बगलामुख्याः कवचेशं मया स्मृतम् ।
त्रैलोक्यविजयं नाम पुत्रपौत्रधनप्रदम् ॥४६॥
ऋणहर्त्तारमेतत्स्याल्लक्ष्मीभोगविवर्द्धनम् ।
वन्ध्या धारयते कुक्षौ पुत्रं पश्यति नान्यथा ॥४७॥

मृतवत्सा च विभूत्याथ कवचं बगले सदा ।
दीर्घायुर्व्याधिहीनस्तु तत्पुत्रस्तु भविष्यति ॥४८॥
इतीदं बगलामुख्याः कवचेशं सुदुर्लभम् ।
त्रैलोक्यविजयं नाम न देयं यस्य कस्यचित् ॥४९॥
अकुलीनाय मूढाय भक्तिहीनाय देहिने ।
लोभयुक्ताय देवेशि न दातव्यं कदाचन ॥५०॥
शिष्याय भक्तियुक्ताय गुरुभक्तिपराय च ।
लोभदन्तविहीनाय कवचेशं प्रदीयताम् ॥५१॥
अभक्तेभ्यो विपुत्रेभ्यो दत्त्वा कुष्ठी भवेन्नरः ।
फलं गृहं न चाप्नोति परं च नरकं व्रजेत् ॥५२॥
दीपमुज्ज्वाल्य मूलेन पठेद्वर्मेदमुत्तमम् ।
प्राप्ते कन्याकंवारे च राजा तद्गृहमेष्यति ॥५३॥
मण्डलेशो महेशानि सत्यं सत्यं न संशयः ।
इदं तु कवचेशं तु मया दिव्यं नगात्मने ॥५४॥
पूजनात् पठनाच्चास्य चतुर्वर्गफलप्रदम् ।
गोप्यं गुप्ततरं देवि गोपनीयं स्वयोनिवत् ॥५५॥

इति रुद्रयामले उमामहेश्वरसंवादे बगलामुखीत्रैलोक्यविजयं नाम कवचं सम्पूर्णं श्रीजगदम्बार्पणमस्तु । मिति माघकृष्ण ५ संवत् १९२२ ईवं दुर्गाशः ।

परिशिष्टम् (घ)

॥ अथ श्रीपीताम्बरारत्नावलीस्तोत्रम् ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीपीताम्बरायै नमः ॥

ओङ्कारद्वयसम्पुटान्तरपुटं मायास्थिराद्वन्द्वितं,
तन्मध्ये बगलामुखीति विमलं सम्बोधनं सर्वं च ।
दुष्टानामथ वाचमाशु च मुखं[1] संस्तम्भयेत्यक्षरं,
जिह्वां कीलय कीलयेति च[2] लिखेद् बुद्धिं तथा नाशय ॥१॥
ब्रह्मास्त्रं सकलार्थसिद्धिजनकं षट्त्रिंशदर्णात्मक-
म्प्रोक्तं पद्मभुवा हिताय जगतां यन्नारदाग्रे पुरा ।

१. ख० पदं । २. वि ।

जीवन्मुक्तपदे विभान्ति सुधियो येषां मुखे भासते,
निर्द्वन्द्वामृतसागरेन्दुकिरणाहाराश्चकोरास्तु ते ॥२॥
ओमित्यादिस्वरूपं[1] जपति तव शिवे शब्दतन्मात्रगर्भा-[2]
वाचो यस्मात् परार्थं प्रकटितपटवो वर्णरूपा निरीयुः ।
ब्रह्माद्यैः पञ्चतत्त्वैः परिवृतमनघं चित्प्रबोधाधिगम्यं,
दुर्ज्ञेयं योगयुक्तैः कथमपि मनसा[3] योगिभिर्गृह्यमाणम् ॥३॥
ह्लीं[4] बीज 'हृदि यस्य'[5] भाति विमलं लक्ष्मीः स्थिरा तद्गृहे,
धैर्यं तस्य कलेवरेऽपि विशते[6] दीर्घायुषो भूतले ।
कल्पान्तेष्वपि वृद्धिमेति विमला तद्वंशवल्ली परा,[7]
शौर्यं स्थैर्यमुपैति तस्य पुरतस्त्रस्यन्ति वादीश्वराः ॥४॥
बद्धुं वारिधिमुद्यतो जनकजानाथोऽपि पीताम्बरे !
त्वां ध्यात्वाऽर्णवशोषणे कृतमतिः सेतुं प्रचक्रे द्रुतम् ।
जित्वा रावणमुग्रशत्रुमबलान् बन्दीन् विमुच्याऽमरान्,
कीर्त्तिं लोकसुखोदयां व्यरचयत् कल्पस्थिरामम्बिके ॥५॥
गर्वी खर्वति रङ्कति क्षितिपतिर्मूकायते वाक्पति-
र्वह्निः शीतति दुर्जनः सुजनते पुष्पायते वासुकिः ।
श्रीनित्ये बगले तवाक्षरपदैर्यन्त्रीकृता[8] यन्त्रिताः,
के के नो निपतन्ति [9]स्त्रस्तमुकुटाश्चन्द्रार्कतुल्या अपि ॥६॥
लावण्यामृतपूरिते तव कृपापाङ्गे निमग्ना नरा
[10]ब्रह्मेशादिदिगीशवृन्दमपि ते जानन्ति गुञ्जोपमम् ।
येषां चेतसि संस्थिताऽसि बगले ! ते विश्वरक्षाक्षमाः,
प्रारब्धं द्रढयन्ति सत्वरतरं विघ्नैरविघ्नीकृताः ॥७॥
मुख्यत्वं समुपैति संसदि तवाऽपाङ्गावलोके नरः,
किं तच्चित्रमहो स्वयं प्रभवते सृष्टिस्थितिध्वंसने ।
यश्चित्ते तव 'भाति मामक इति'[11] त्वद्दर्शनं यस्य वा,
तं सर्वा ह्यणिमादयोऽप्यतितरामाराधयन्ते ध्रुवम् ॥८॥
क्षीणानां[12] बलदायिनीं जलनिधौ 'पोतस्थितो नाविकां,'[13]
तत्त्राणं[14] घनकुञ्जगह्वरगिरिव्याघ्रादिभीतेष्वपि[15] ।

---

१. ख. ओमित्याद्यं । २. ०गर्भं । ३. तपसा । ४. ष्लू । ५. हृदये वि । ६. भजते । ७. तति: । ८. ० ये नित्यतो । ९. भ्रष्टमु० । १०. ब्रह्मेन्द्रादिदिगीशभूतमपि । ११. ख. भक्तिमाशु कुरुते । १२. खिन्नानां । १३. पोतस्थितानां गतिः । १४. त्वं त्राणं । १५. ० सत्वेष्वपि

त्वां पीताम्बरधारिणीं 'परशिवां चन्द्रार्द्धचूडां गदा-'[1]
हस्तां वामकरे[2] प्रतीपरसनामुन्मीलयन्तीं[3] भजे ॥९॥

स्वेच्छं[4] ये प्रणमन्ति पादयुगलं पीताम्बरे ! तावकं,
ते वाञ्छाधिकमर्थमाप्य सकलां सिद्धिं भजन्ते पुनः ।
यद्यत्कर्त्तुमुरीकरोति बगले ! त्वत्साधकोऽत्राधुना,
तत्सञ्जातमिवेक्षते तव कृपाऽपाङ्गावलोके क्षणात् ॥१०॥

वाणी[5] सूक्तिसुधारसद्रवमयी सालङ्कृतिस्तन्मुखे,
शापानुग्रहकारिणी कविजनानन्दैकसंवर्द्धिनी ।
व्याकर्तुं क्षमते विशालमतिमांस्त्वत्सेवको वाङ्मयं,[6]
किं चित्रं यदि सृष्टिमाशु रचते ब्रह्माण्डकोटचायते[7] ॥११॥

देवि ! त्वद्भक्तदृष्टचा तुहिनगिरिमुखाः पर्वताः पांसुतुल्या
ज्वालामालाश्च चन्द्रामृतकरसदृशाः पुष्पतां यान्ति नागाः ।
मूकत्वं वाक्पतीन्द्राः सरसि समतुलामाश्रयन्ते समुद्रा
राजानो रङ्कभावं रणभुवि रिपवो विद्रवन्ते विशङ्काः ॥१२॥

लेख्यं[8] तावकमन्त्रबीजममलं दुष्टौघसंस्तम्भन,
वश्याकर्षणमारणप्रमथनप्रक्षोभणोच्चाटने ।
व्यक्तं वज्रमिवापरं यदि मुखे जागर्त्ति तस्याग्रतः,
पादान्तः परिसञ्चरन्ति रिपवो ये सप्तद्वीपेश्वराः ॥१३॥

नानारत्नविभूषितामलमणिद्वीपे सुधासागरे,
कल्पानोकहकाननान्तरगता या रत्नवेदी परा ।
तत्राकारितपञ्चप्रेतकमये सिंहासने संस्थितां,
ध्यायेऽहं करुणाकरां हरिहराराध्यामशेषार्थदाम् ॥१४॥

वाग्देवी वदने वसत्यविरतं नेत्रे च लक्ष्मीः करे,
दानं दीनकृपालुता च हृदये वीरत्वमाजौ सदा ।
त्वद्भक्तस्य भवाब्धिपारतरणे तत्त्वोदयो जायते,
तेनेदं नलिनीदलोपरि जलाकारं जगद् भासते ॥१५॥

चञ्चत्काञ्चनतुल्यपीतवसनां चन्द्रावतंसोज्ज्वलां,
केयूराङ्गदहारकुण्डलधरां भक्तोदयायोद्यताम् ।

---

१. परचमूविद्रावणोद्यद्गदा । २. वामकरेण । ३. शत्रुरसन० । ४. स्पृष्टं ।
५. मुक्ति० । ६. ऽत्राधुना । ७. ०कोटिपालये । ८. हृष्ट्वा ।

त्वां ध्यायामि चतुर्भुजां त्रिनयनामुग्रारिजिह्वां करे,
कर्षन्तीमहमम्ब पाहि बगले ! त्राणं त्वमेवासि मे ॥१६॥
मातस्ते महिमानमुग्रमधिकं प्रोक्तं स्वयं मानवै—
र्वाक्यं सन्द्रियते[1] श्रमेण यदि वा शक्त्या गुणाम्भोनिधेः ।
नो निश्शेषतया सुरैरविदितप्रान्तस्य पद्मालये,
तस्मात् सर्वगता त्वमेव सदसद्रूपा सदा गीयते ॥१७॥
खञ्जं तार्क्ष्यसमोद्यमं[2] प्रकुरुते तार्क्ष्यं च खञ्जाधिकं,
वान्तं[3] स्तम्भयते जलाग्निशमने याऽव्यक्तशक्तिः शिवे ।
तद्बीजं बगलेति मेऽस्तु रसनालग्नं सदैवामलं,
यद्ब्रह्मादिसुदुर्लभं भुवि नरैः सत्प्राक्तनैर्लभ्यते[4] ॥१८॥
स्तम्भत्वं पवनोऽपि[5] याति भवती[6] भक्तस्य पीताम्बरे ।
किं चित्रं यदि वारिधिः स्थलपदं मेरुस्तु माषोपमाम् ।
कल्पानोकहकामधेनुप्रमुखै रत्नैरलिन्दस्थितै[7]—
र्वाञ्छार्थाधिकदानमाशु कुरुते दीनेष्वदीनेष्वपि ॥१६॥
भाग्याद्यस्य मुखे विभाति विमला विद्या विशेषाधिका,
षट्त्रिंशद्भिरथोदिता बहुगुणैर्बीजैस्तु सर्वार्थदा ।
तं सर्वे प्रणमन्ति मानवममी[8] सेन्द्राः सुरा भूसुराः,
[9]क्रान्ताशेषमहोदयं स्वकलनाक्रान्तत्रिलोकालयम्[10] ॥२०॥
यत्किञ्चिद्भुवने विभाति विमलं रत्नं महानन्दनं,[11]
यां यां वृत्तिरुदारतां जनयते यद्यत्परं सुन्दरम् ।
यत्किञ्चिद्भुवनेऽथवा नु[12] महता शब्देन वा कीर्त्यते,[13]
तत्सर्वं तव रूपमेव बगले ! संसारपारप्रदे ॥२१॥
जाग्रत्पूर्णकृपामृतौघभरिते श्रीमत्कटाक्षेक्षणे,
सर्वार्थप्रतिपादकव्रतधरे ये ये निमग्ना नराः ।
तेषां भाग्यमतीन्द्रिय निगदितुं ब्रह्मादयो न क्षमा
ये सङ्कल्पविकल्पमात्ररचनाः प्राणात्यये हेतवः ॥२२॥
हस्ते संगृह्य चापं [14]शरधरनिकरैर्यत्किरातं महाजौ,
पार्थो ब्रह्मास्त्रविद्याभ्यसनपटुमतिर्द्वन्द्वयुद्धे तुतोष ।

---

१. ख. 'संह्रियते' इत्यपि पाठः । २. 'तार्क्ष्यजयोद्यत' इति पाठः । ३. 'वासुं' क्वचित् । ४. 'सत्प्राक्तनैर्लभ्यते' इति पाठः । ५. परमोऽपि । ६. पवनो । ७ रत्नैरनेकैः स्थितैः । ८. ०ममुं । ९. कान्ताशेष० । १०. स्वकलनाक्रान्त्या० । ११. महानन्ददम् । १२. ऽण । १३. कीर्त्तिते । १४. शितशर० ।

तत्सर्वं देववृन्दैरथ रिपुनिवहैर्वीक्षितं सिद्धलोकै-
धैर्यं[1] शौर्यं च सर्वं[2] तव वरजनितं भाति पीताम्बरेऽत्र ॥२३॥

पीतां पीतजटाधरां त्रिनयनां पीतांशुकोल्लासिनीं,
हेमाभाङ्गरुचिं शशाङ्कमुकुटां सच्चम्पकस्रग्युताम् ।
हस्तैर्मुद्गरवज्रवैरिरसनां संबिभ्रतीमादरात्,
दीप्ताङ्गीं बगलामुखीं त्रिजगतां संस्तम्भिनीं चिन्तये ॥२४॥

कर्णालम्बितलोलकुण्डलयुगां श्वेतेन्दुमौलिं[3] करैः,
केयूराङ्गदपाशमुद्गरगदावज्रादिकान् बिभ्रतीम् ।
देवीं पीतविभूषणामरिकुलध्वंसोद्यतां ये नरा
ध्यायन्त्याशु लभन्ति सिद्धिमतुलां ते बालिशाः स्युः कथम् ॥२५॥

लब्ध्वा मातरशेषकान्तिभरितानन्दं[4] कृपावीक्षणं,
वर्षीयानपि मोहितुं प्रभवति स्त्रीवृन्दमुन्मीलितुम् ।
किं तच्चित्रमनेकधा भ्रमयते दृष्ट्या त्रिलोकीमिमां,
सूर्येन्दुस्तनधारिणीमपि बलात् कन्दर्पदर्पाधिकः[5] ॥२६॥

यन्त्रं जैत्रमनेकदुःखशमनं पीताम्बरे ! तावक-
मोङ्कारद्वयसम्पुटेन पुटितं शिष्टैस्तथावेष्टितम् ।
तद्बाह्ये स्थिरमाययाष्टपुटितं पाशाङ्कुशाद्यावृतं,
येषां चेतसि 'भाग्यतो निवसते ते विश्वसर्गक्षमाः'[6] ॥२७॥

कर्पूरागुरुचन्दनैर्मृगमदैर्गोरोचनाकेशरै-
स्त्वत्पादाम्बुजमर्चयन्ति बगले![7] ये प्रत्यहं मानवाः ।
ते लब्ध्वा श्रियमद्भुतामपि चिरं भोगांश्च भुक्त्वाऽवनौ,
सायुज्यालयमाविशन्ति परमानन्दोऽस्ति यत्राधिकः ॥२८॥

लब्ध्वा पादयुगे रतिं तव शिवे क्षुद्रोऽपि देवेन्द्रता-
मासाद्यामरसुन्दरीभिरमलैर्भोगैर्दिवि क्रीडति ।
ये हित्वा तव भक्तिमन्यभजनानन्दाश्चिरं ते नरा
भ्रष्टा धर्मपराङ्मुखा भ्रमधियो भारं वहन्ते भुवि ॥२९॥

यामाराध्य हरो हरत्वमभजद् विष्णुस्तु विश्वात्मतां,
चक्रे सृष्टिमजोऽप्यवोचदखिलं वेदादिसद्वाङ्मयम् ।
ध्यात्वा ध्वान्तमशेषमाशु हरते सूर्योऽपि पीताम्बरे ।
तीव्रं तापमपाकरोति रजनीनाथोऽपि चूडाश्रितः ॥३०॥

---

१. ख स्थैर्यं । २. समस्तं । ३. पीतेन्दु० । ४. ०भरितं दिव्यं । ५. ०दर्पाधिकाम् !
६. '–' संस्थिताऽक्षि बगले ते विश्वरक्षाक्षमाः । ७. सततं ।

बुद्धिं नाशय कीलयाशु[1] रसनामङ्घ्र्योर्गतिं स्तम्भय,
दुष्टान् द्रावय मारयारिनिवहान् दासांश्चिरं पालय।
इत्थं ये बगलामुखीं पदगतिं लब्ध्वा पठिष्यन्ति ते,
यन्त्रारूढमिवारिवृन्दमखिलं कर्त्तुं समर्थाः सदा ॥३१॥

ध्यात्वा त्वां बगले ! पुरा गिरिसुता चक्रे शिवं स्वं वरं,
प्रोक्तं नार्पयितुं शिवेन गदिता संकल्पनाम्नौ तदा।
[2]त्यक्ताग्निर्गलितावलिं गिरिसुतात् त्यक्त्वा गलस्तन्मुखात्,
तस्मात् त्वं बगलामुखी निगदिता नित्या परा योगिनी ॥३२॥

[3]नागेन्द्रैर्देवसिद्धैर्मुनिवरनिवहैर्दानवै राक्षसेन्द्रै-
र्दिक्पालैर्दिक्करीन्द्रै र्दिनकरप्रमुखैः सद्ग्रहैस्तारकाद्यैः।
ब्रह्माद्यैः स्थूलसूक्ष्मैरविदितमुदिता त्वं परा चोन्मनी त्वं,
नित्या पीताम्बरा त्वं रिपुभयशमनी भक्तिचित्तासनस्था[4] ॥३३॥

[5]शम्भुर्यद्गुणगाननोद्यतमतिर्नाटचोत्सवैस्ताण्डवे,
चक्रे चन्द्रमयूखकम्पनकरां[6] नीराजनां[7] पादयोः।
[8]हेमाम्भोजदलैर्जटाजलभरैरानन्दितैर्मौलिभिः[9],
पूजां प्रत्यहमातनोति नटयन् स्वैर्हस्ततालादिभिः ॥३४॥

यां दध्रे चतुराननोऽपि वदने चित्तारविन्दस्थितां,
यां वक्षःस्थलसंस्थितां हरिरजामालिङ्ग्य पीताम्बराम्।
यद्देहार्धमुरीचकार पुरजित्[10] सौन्दर्यसाराधिकां,
षट्चक्राक्षररूपिणीं भज सखे ! देवीं जगत्पालिकाम्[11] ॥३५॥

हस्ते भाति गदा सदार्त्तिशमनी रत्नावली त्वङ्कुजे,
पादे नूपुरमीशमौलिमणिभिर्नीराजितं[12] राजते।
ताटङ्कं श्रवणे कुचोपरि सदा[13] कस्तूरिकालेपनं,
काश्मीरद्रवमङ्गरागमधिकां पीतच्छविं[14] तन्वते ॥३६॥

ॐकारद्वयसम्पुटेन पुटितां 'विद्यागमे संस्थितां,'[15]
षट्चक्राक्षरबीजसाररचितां षट्त्रिंशदर्णात्मिकाम्[16]।

---

१. ख.कीलयारि। २. त्यक्त्वा०। ३. नागेन्द्रैर्देवसंघैर्भुवि०। ४. भक्त०। ५. ०गुणगानतत्परमतिर्नित्योत्सवे। ६. ०कम्पनमिवा। नीराजनं। ८. हेमाम्भोजजलै०। ९. नन्दिता मौलिभिः। १०. पुरभित्। ११. जगद्व्यापिकाम्। १२. ०नीराजनं। १३. लसत्। १४. पीतां छविं। १५. विद्यामजास्थे स्थितां। १६. सत्तत्ववर्णात्मिकाम्।

'ये जानन्ति जपन्ति सन्ततमभिध्यायन्ति गायन्ति वा,
ते वन्द्या विबुधैश्चरन्ति भुवने सिद्धार्चिताः सिद्धये'[१] ॥३७॥

स्वाहाशक्तिरुपासने तव ऋषिः श्रीनारदो देवता,
नित्या श्रीबगलामुखी निगदिता छन्दो भवेत् त्रिष्टुभम् ।
बीजं तु स्थिरमायया विरचितं नानाविधस्तम्भने,[२]
प्रोक्तं पद्मभुवाऽखिलाप्तिविनियोगोऽप्यच्युताकारता[३] ॥३८॥

हृद्यं सर्वसुरेश्वरैश्च ऋषिभिर्दुष्प्राप्यमेवाद्भुतं,
स्तोत्रं गोप्यतमं स्वभाग्यवशतः प्राप्तं[४] पठिष्यन्ति ये ।
सूक्त्या[५] देवगुरुं 'धनेन धनदं'[६] जित्वा चिरञ्जीविता,
षण्मासात् सुखसागरे शिवसमाक्रीडां करिष्यन्ति ते ॥३९॥

देवी स्वप्नगता स्वयैव लिखितं मह्यं ददावद्भुतं,
दिव्यास्त्रं पुरतः पठस्व विमलं सिन्दूरवर्णैः करैः ।
रोमाञ्चाङ्कितहर्षमाप्य लुलितैरङ्गैः[७] पठन्तं नर-
प्राप्तोऽहं परमोदयप्रदमिदं ज्ञानं कवीन्द्रादिदम्[८] ॥४०॥

प्राप्ता श्रीबगलामुखीवदनतः स्वप्ने सुविद्या मया,
षट्त्रिंशद्भिरिमैः सुवर्णनिचयैः सद्बीजरत्नावली ।
येषां कण्ठगता विभाति जगतीपीठे प्रयोगक्षमा,
वश्याकर्षणमोहमारणविधौ स्तम्भे तथोच्चाटने ॥४१॥

चलत्कनककुण्डलोल्लसितचारुगण्डस्थलाम्,
लसत्कनकचम्पकद्युतिविराजिचन्द्राननाम् ।
गदाहतविपक्षकां कलितलोलजिह्वाञ्चलां,
स्मरामि बगलामुखीं विमुखवाङ्मुखस्तम्भिनीम्[९] ॥४२॥

॥ श्रीपीताम्बरारत्नावलीस्तोत्रम् सम्पूर्णम् ॥[१०]

संवत् १८९० शाके १७५५ आषाढमासे शुक्लपक्षे ५ मंदवासरे लिखितं ब्रह्मचारि-काशिनाथेन ॥ श्रीगङ्गाविश्वेश्वराभ्यां नमः ॥

१. ख. पादद्वयं एकचत्वारिंशच्छ्लोकादनन्तर विद्यते । २. नानाविधि० । ३. ०प्यसत्कारकः । ४. नित्यं । ५. शस्त्या । ६. धनैर्धनपतिं । ७. ललितै० । ८. कवीन्द्रार्चितम् । ९. ख. श्लोकोऽयं नास्ति । १०. इति श्रीनारदोक्तं पीताम्बरादेवीस्तवराजस्तोत्रम् ।

सांख्यायनतन्त्रस्थानाम्

पद्यानामनुक्रमः

पृष्ठाङ्क पद्याङ्क

ओ

क

न



राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला के

नवीनतम प्रकाशन (सन् १९६८–६९ एवं १९६९–७०)

नाम	सम्पादक	मूल्य
१. वैताल पच्चीसी	डॉ. पुरुषोत्तमलाल मेनारिया	३–५०
२. मारवाड़ रा परगनां री विगत भा. १	डॉ. नारायणसिंह भाटी	१५–५०
३. „ „ „ भा. २	„	१२–५०
४. देवी चरित भाग १	श्री हुक्मचन्द चतुर्वेदी	१३–२५
५. „ भाग २	„	२१–००
६. राजस्थानी वीरगीत-संग्रह भाग १	श्री सौभाग्यसिंह शेखावत	६–५०
७. „ „ „ भाग २	„	६–२५
८. राजनीति रा कवित्त	डॉ. नारायणदत्त श्रीमाली	५–००
९. सिन्धुघाटी की लिपि में ब्राह्मणों और उपनिषदों के प्रतीक	डॉ. फतहसिंह	५–००
१०. शङ्करीसङ्गीतम्	श्री लक्ष्मीनारायण गोस्वामी	१–२५
११. सङ्घपति रूपजी-वंशप्रशस्तिः	महोपाध्याय विनयसागर	१–२५
१२. सनत्कुमारचक्रिचरितमहाकाव्य	„ „	११–५०
१३. पथ्यास्वस्तिः सहिन्दी व्याख्या	श्री सुरजनदास स्वामी	६–००
१४. मन्त्रभागवतम्	सुश्री श्रद्धाकुमारी चौहान	१–७५
१५. सांख्यायनतन्त्रम्	श्री लक्ष्मीनारायण गोस्वामी	
१६. सिंहसिद्धान्तसिन्धु	डॉ. फतहसिंह एवं श्रीलक्ष्मीनारायण गोस्वामी	

त्रैमासिक 'स्वाहा'

जिसमें, सिन्धु लिपि में ढाई हजार मुद्रालेखों को पढ़ कर नवीनतम शोध के साथ राष्ट्रीय एकता और अखण्ड भारतीयता पर प्रकाश डाला गया है तथा सिन्धु लिपि की भाषा का अध्ययन, उपनिषद्कालीन संस्कृति के आलोक में आलोचनात्मक शोधपूर्ण लेखों का क्रमशः प्रकाशन किया जा रहा है। अब तक तीन अंकों का प्रकाशन हो चुका है।

—ले० डॉ० फतहसिंह

वार्षिक मूल्य १५ रु० एक अंक का मूल्य ४ रु०

प्राप्तिस्थान

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (राजस्थान)